॥ श्री वर्द्धमानाय नमः ॥

सोलह सतियाँ

जैन सिद्धान्त प्रथमा परीक्षा का पाठ्यग्रंथ

:: सम्पादक ::

पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल

:: प्रकाशक ::

पं. बदरीनारायण शुक्ल

तृतीय संस्करण	मूल्य	वीर सं. २४९९
१०००	८० पैसे	ई. सन् १९७३

प्रकाशक

पं. बदरीनारायण शुक्ल
मंत्री—पुस्तक प्रकाशन विभाग
श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड
पाथर्डी (अहमदनगर)

**

प्रथम संस्करण २०००
द्वितीय संस्करण ३०००
तृतीय संस्करण ३०००
मूल्य ८० पैसे
वीर संवत् २४९९
ई. सन् १९७४

मुद्रक :- बदरीनारायण द्वारिकाप्रसाद शुक्ल
श्री सुधर्मा मुद्रणालय, ८१० मंत्री गली
पाथर्डी (अहमदनगर)

— भूमिका —

प्रस्तुत पुस्तक में जिन आदर्श नारियों का जीवन-चरित्र संकलन किया गया है, वे सोलह सतियाँ आज के नारी-समाज के लिये आदर्श हैं। इसी कारण जैन परम्परा में उनका विशेष महत्त्व है। वे प्रातःस्मरणीय समझी जाती हैं। वास्तव में उनके चरित से जो ध्वनि निकलती है, यदि वह आज भारत के घर-घर में गूँजने लगे और उसी ध्वनि के आदेश पर भारतीय गृहस्थ-जीवन का निर्माण हो तो गृहस्थी स्वर्ग के समान सुख-शान्ति का सदन बन कसती है। एक समय था, जब भारतीय पारिवारिक जीवत एकान्त सुख और शान्ति से युक्त था। इसका कारण भारतीय नारियों का वह आदर्श ही था, जो पुस्तक में चित्रित किया गया है।

खेद की यह बात है कि जब से पश्चिम की संस्कृति की परछाईं भारत की संस्कृति पर पडी है, तभी से भारतीय जन भी अपनी संस्कृति को भूलते जाते हैं। इसके विषैले परिणाम नित्य प्रति दृष्टिगोचर हो रहे हैं। गृहस्थ-जीवन अशान्त और असंतोषमय बनता जा रहा है। पति-पत्नी में परस्पर आत्म-समर्पण की भावना विलीन-सी हो रही है। इसके बदले अधिकारों की माँग बढ़ती जा रही है। फिर भी लोग अपने प्राचीन आदर्शों की ओर दृष्टिपात नहीं करते। हमारा विश्वास है कि असली पारिवारिक सुख-शान्ति तब तक नसीब नहीं हो सकती जब तक पति और पत्नी में आपस में समर्पण की भावना उत्पन्न नहीं हो जाती और पत्नी पतिव्रत-धारिणी तथा पति पत्नी-व्रतधारी नहीं बन जाता।

इसी आदर्श की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से यह प्रयत्न किया गया है। अगर इस प्रयत्न ने इस आदर्श की प्रतिष्ठा में तनिक भी योग दिया तो यह प्रयत्न सार्थक होगा।

इस पुस्तक में लिखित सोलह सतियों का चरित्र अनेक जगह प्रसिद्ध हो चुका है। फिर इस पुस्तक की आवश्यकता क्यों हुई? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रस्तुत पुस्तक छोटी बालिकाओं के लिए लिखी गई है। दूसरे संस्करणों में कोई विस्तृत था, कोई अति संक्षिप्त था और किसी की भाषा ऐसी थी जो बालिकाओं के लिये उपयुक्त न थी। अतएव छोटे और

सरल वाक्यों में सोलह सतियों का यह जीवन-चरित्र तैयार किया गया है। जिस उद्देश्य से यह तैयार किया गया है, उसे पूर्ण करेगा ।

सतियों का जीवन-चरित्र लिखाने में सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी श्रीमान् सेठ भैरोदानजी सा. सेठिया द्वारा सेठिया ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'सोलह सती' पुस्तक का मुख्य रूप से सहारा लिया गया है। उसे समक्ष में रख-कर यह पुस्तक तैयार कराई गई है। अतएव हम सेठियाजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

जैन धर्म में चार अनुयोग माने गये हैं। उनमें एक धर्मकथानुयोग भी है। धर्मकथानुयोग में महापुरुषों के आदर्श जीवन की कथाएं होती हैं और उन कथाओं के द्वारा सरसता के साथ नीति, धर्म और अध्यात्म का ज्ञान दिया जाता है।

व्यावहारिक दृष्टि से जीवन-चरित्र इतिहास का एक अंग होता है और इतिहास उस जाति, समाज व देश की पुरानी घटनाओं का दर्पण माना जाता है। अपना जीवन आदर्श बनाने के लिये पूरा इतिहास पढ़ जाने की अपेक्षा आदर्श व्यक्तियों का जीवन-चरित्र पढ़ लेना कहीं अधिक उपयोगी होता है। यही कारण है कि बाल्यकाल में माताओं के द्वारा विभिन्न कहानियों के रूप में और कुछ अवस्था बढ़ने पर पुस्तकों के जरिए पाठशालाओं में हमें जीवन-चरित्र पढ़ाये जाते हैं और सन्त-सतियों के द्वारा भी धार्मिक कथाएं प्रवचनों में सुनाई जाती हैं। इस अध्ययन का हमारे जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। यह वही ज्योति है जिसके प्रकाश में हम अपनी भावी जीवन-रेखा तैयार करते हैं। इसी भूमिका को लेकर श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की विद्वत्परिषद ने अपनी बेलापुर रोड़ की ता. ८–१०–४७ की बैठक में बालक-बालिकाओं के लिये अनुक्रम से दस श्रावकों का और सोलह सतियों का चरित्र पाठ्य-रूप में रखने का निर्णय किया। वैसे तो दोनों ही जीवन-चरित्र दोनों प्रकार के छात्रों के लिये उपयोगी है तथापि कन्या छात्रों के लिये सती-चरित्र विशेष प्रकाशदायक है। इस पुस्तक में १६ सतियों के सुखी जीवन से लेकर आपद् अवस्था तक की घटनाएं और उन सभी अवस्थाओं में

दृढ़व्रत, सत्य संकल्प और चैतन्य शक्ति का महान् प्रभाव दिखाया गया है, अपनी विवेकशक्ति से कभी कभी महिलाएं पुरुषों को भी कैसी मात कर देती हैं और कर्म शत्रु जैसे अदम्य रिपु का दमन करने में अबलाएं कैसे प्रबलाएं बन जाती हैं इत्यादि शिक्षाएं कन्या छात्रों के लिये अनुकरणीय रूप में पढ़ने को मिलेंगी।

छात्रों की योग्यता का ख्याल रखकर पुस्तक की अतीव सरल भाषा, सुगम्य एवं सुरुचिकर बनाई गई है। यों तो हमारे परम-मित्र पं. भारिल्लजी अपनी सीधी लेखनी के लिए प्रसिद्ध ही हैं तथापि इस पुस्तक को तैयार करने में आपने जो सादगी दिखलाई है वह धन्यवाद देने के लिए और भी प्रेरित कर रही है।

परमोपकारी जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री आनंदऋषिजी म. साहब ठाणा ४ का चातुर्मास संघ-ऐक्य योजना की सिद्धि के लिए इस वर्ष (वीर संवत् २४७५ में) ब्यावर में हुआ। श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा पाथर्डी और श्री जैन सिद्धान्त शाला अहमदनगर, घोडनदी आदि लोकोपयोगी पार-मार्थिक संस्थाओं की वार्षिक सभा के लिये मैं भी वहां उपस्थित हुआ था। उस समय पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल द्वारा इस पुस्तक के सपादन की बात पूज्य श्री जी से सुनने में आई। प्रसन्नता के साथ प्रारंभ के दो चार पत्ते पढ़ लिये। शैली सुंदर होने से पसन्द आई। पश्चात् थोडे ही दिनों में बहु-प्रयास से समय निकाल कर आपने इसे पूरा कर लिया और गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस ब्यावर ने अपने दूसरे कामों को एक बाजू करके इसे तुरंत ही प्रकाशित भी कर दिया। इस तत्परता के लिये पं. श्री भारिल्लजी, भाई धीरजलालजी तुरखिया तथा शांतिलालजी सेठ आदि महानुभाव शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

राहुरी (अहमदनगर) निवासी श्रीमती राजीबाई ओस्तवाल ने श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के धार्मिक पुस्तक प्रकाशन खाते में सं. १९९९ में साढे नौ सो रुपया सहायता दी थी। उस रकम के व्याज से आज यह सोलह सतियां पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

आपका विवाह बेलापुरवाले श्री दुलीचंदजी ओस्तवाल के साथ हुवा था। आप अल्पकाल तक ही सौभाग्यवती रहीं। आपकी धर्मभावना

आषाढ़ शु. ७ शनिवार सं. १९९९ में आपका आयुष्य पूर्ण हो गया।

सोलह सती जैसी उपयोगी पुस्तक अगर बाईजी की मोजूदगी में ही प्रकाशित हो जाती तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होती मगर काल पर किसी का जोर नहीं चलता ! अस्तु'

बाईजी के परिवार में हरकचन्दजी, खुशालचंदजी, चन्द्रभानजी गोविंदरामजी, नेमीचंदजी आदि सुराणा-परिवार राहुरी में है। इस पुस्तक को देखकर उनके अन्तःकरण सन्तुष्ट होंगे ऐसा पूर्ण विश्वास है।

यह पुस्तक पाठकों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हो और पाठक भी अधिकाधिक संख्या में इससे लाभ उठावें इसी शुभ-कामना के साथ यह प्रस्तावना पूर्ण की जा रही है।

— बदरीनारायण शुक्ल

तृतीयावृत्ति की प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक छात्राओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित होनेसे इसे महत्त्व है ही परन्तु चारित्र्यनिष्ठा और शील-शिक्षा के लिये यह संक्षिप्त सती-संस्करण सर्वसाधारण के लिए परमोपयोगी होने से परीक्षा बोर्ड के पुस्तक प्रकाशन विभाग ने इसे प्रकाशित करना अत्यावश्यक मानकर इसकी ३००० प्रतियां इस संस्करण में प्रकाशित की हैं। कागज की दुर्मिलता और महर्घता के कारण प्रकाशन-व्यय अधिक लग जाने से इसके प्राचीनमूल्य में विवशता के साथ किंचित् अन्तर करना पड़ा है। आशा है पाठक गण पुस्तक के महत्त्व को समझकर इसे अन्तःकरण से अपनायेंगे।

बदरीनारायण शुक्ल

०००

सोलह सतियाँ

१

ब्राह्मी

काल-चक्र के दो विभाग हैं–प्रथम उत्सर्पिणी और दूसरा अवसर्पिणी। जिस काल में जीवों की आयु, शरीर, शक्ति और धर्म-भावना आदि बढ़ती चली जाती हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। अवसर्पिणीकाल इससे विपरीत होता है। इसमें क्रम से आयु घटती जाती है, शरीर छोटा होता जाता है, शक्ति में कमी आती रहती है और धर्म-भावना भी कम होती रहती है।

उत्सर्पिणी काल के बाद अवसर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल के बाद उत्सर्पिणी काल आता रहता है। अनादि से ऐसा हो रहा है और अनन्त काल तक ऐसा ही होता रहेगा। इन दोनों कालों के छह-छह भेद हैं। उन्हें 'आरा' कहते हैं। प्रत्येक काल के तीसरे और चौथे आरे में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं।

इस समय अवसर्पिणीकाल चल रहा है। अवसर्पिणीकाल का यह पांचवां आरा है। इसके तीसरे और चौथे आरे में भी चौवीस तीर्थंकर हो गये हैं। चौवीस तीर्थंकरों के नाम तो तुम्हें याद है न? उनमें सबसे पहला नाम ऋषभदेव भगवान का है। ऋषभदेव भगवान तीसरे आरे में हो गये हैं।

जब भगवान ऋषभदेव हुये थे तब यहां अकर्मभूमि थी। अकर्मभूमि का अर्थ यह है कि उस समय लोगों को अपना जीवन-निर्वाह करने के लिये कर्म (काम) नहीं करना पड़ता था। न कोई खेती करता था, न व्यापार-धन्धा करता था, न नौकरी-चाकरी करता था। दस प्रकार के कल्प-वृक्ष थे। उनसे सब की मनचाही वस्तु मिल जाती थी। मिहनत करने की आवश्यकता ही नहीं थी। उस समय के लोग खूब आनन्द में रहते थे। शान्ति और सन्तोष के साथ रहते थे।

काल के प्रभाव से कल्पवृक्षों की शक्ति घटने लगी। वे कम फल देने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने फल देना बिलकुल बन्द कर दिया। लोगों को बडी कठिनाई मालूम पडी। उन्हें पेट पालना कठिन हो गया। खेती करना जानते नहीं थे, भोजन बनाना आता नहीं था। अब करें तो क्या करें? उस समय यह बडी भारी विपदा थी। इस संकट को कौन टालता?

उस समय भगवान ऋषभदेव ही सबसे बडे ज्ञानी थे। वे अत्यन्त दयालु और परोपकारी भी थे। जनता के ऊपर आये हुए इस घोर संकट को उन्होंने अपने ज्ञान से मिटा दिया। उस समय भगवान गृहस्थावस्था में थे। भगवान ने जनता को खेती करना सिखलाया, भोजन बनाना सिखाया, बर्त्तन बनाने की

शिक्षा दी, कपड़े बनाना बताया, पढ़ने-लिखने की विधि सुझाई। कहने का मतलब यह कि भगवान ने पुरुषों की ७२ और स्त्रियों की ६४ कलाएँ सिखलाईं। इन्हीं कलाओं की बदौलत आज हम सब सुख-शान्ति के साथ जीवित रह रहे हैं। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव का इस संसार पर असीम उपकार है। उन्होंने मनुष्य-समाज को एक नये सांचे में ढाल कर बचा लिया।

भगवान् ऋषभदेव, राजा नाभि के पुत्र थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। उनकी दो गुणवती रानियां थीं। एक का नाम सुमंगला और दूसरी का नाम सुनन्दा था।

रानी सुमंगला ने एक रात के चौथे पहर में चौदह उत्तम स्वप्न देखे। स्वप्न देखकर वह जाग उठी और अपने पति से स्वप्नों का फल पूछा। ऋषभदेवजी ने बतलाया कि तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होगी। यह फल सुनकर सुमंगला रानी बहुत प्रसन्न हुई। वह गर्भ की रक्षा करने के लिए नियम के अनुसार आहार–व्यवहार करने लगी। न ज्यादा तीखा–चरपरा भोजन करती, न ज्यादा खट्टा–मीठा खाती। हल्का और सात्विक भोजन करती। न सख्त परिश्रम करती और न दिन भर निकम्मी पड़ी रहती। हल्का परिश्रम अवश्य करती थी। वह बहुत सावधानी से चलती-फिरती थी। रानी सुमंगला को मालूम था कि गर्भवती स्त्री अगर बुरे विचार करती है तो गर्भ का बालक भी बुरे विचार का होता है। गर्भवती स्त्री की भावना अगर धर्मयुक्त और नीतिमय होती है, तो उसका बालक भी धर्मात्मा और नीतियुक्त बनता है। इसलिये सुमंगला रानी अपने विचार सदैव पवित्र रखती थी।

न क्रोध करती, न अभिमान करती। न कपट करती, न लालच करती। न किसी से डाह करती और न किसी से लड़ाई-झगड़ा करती थी।

समय आनेपर रानी सुमंगला ने एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्र का नाम भरत और पुत्री का नाम ब्राह्मी रक्खा गया। ब्राह्मी जब पढ़ने के योग्य हुई तो उसके पिता श्री ऋषभदेव ने उसे विद्या पढ़ाई।

बहुत से लोग समझते हैं कि लड़कियों को पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। मगर उनकी समझ सही नहीं है। लड़कियों को पढ़ाने से लाभ न होता तो भगवान ऋषभदेव अपनी लड़की को क्यों पढ़ाते ? इतना ही नहीं, ऋषभदेव ने लड़कों से भी पहले अपनी लड़की को पढ़ाया था। ब्राह्मी के लिए ही उन्होंने लिपिविद्या (वर्णमाला) चलाई थी। इसी कारण यह लिपि आज तक ब्राह्मीलिपि कहलाती है।

कुछ काल बीत जाने के बाद भगवान ऋषभदेव ने संसार त्याग कर दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारण करके उन्होंने छह महीनों का उपवास किया और फिर छह महीनों तक आहार न मिलने के कारण वे निराहार रहे। इस प्रकार लगातार एक वर्ष तक उनका अनशन तप चला। और भी अनेक प्रकार की तपस्याएँ उन्होंने कीं। तपस्या से उनकी आत्मा पूर्ण शुद्ध हो गई और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

केवलज्ञानी होकर भगवान ने धर्म का उपदेश देना आरंभ किया। एक बार विहार करते-करते भगवान अयोध्या नगरी में पधारे। भरत चक्रवर्ती अपने परिवार के साथ भगवान के

दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए गये। सब ने भगवान को विधिपूर्वक वन्दना की। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। उपदेश सुनकर ब्राह्मी की धर्मभावना जागृत हो गई। भगवान के उप॰ देश का उसपर गहरा असर पड़ा।

जब उपदेश समाप्त हो गया तो ब्राह्मी ने भगवान को वन्दना करके प्रार्थना की—'भगवन्! आपका उपदेश सब दुःखों का अन्त करने वाला है। मैं संसार के दुःखों से छुटकारा चाहती हूं। मुझे संसार के भोग और उपभोग रुचिकर नहीं हैं। मैं धर्म की साधना करके अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाना चाहती हूं। जन्म लेकर मरना और मरकर फिर जन्म लेना, फिर मरना और फिर जन्म लेना, इस प्रकार का जन्म-मरण का यह चक्र अनादि से चल रहा है। आपकी कृपा से मैं इस चक्र से छूटना चाहती हूं। कृपा करके मुझे दीक्षा दीजिए।'

भगवान ऋषभदेव ने उत्तर दिया—'राजकुमारी! भरत चक्रवर्ती तुम्हारे संरक्षक हैं। उनसे दीक्षा लेने की आज्ञा मांगो, अगर वे आज्ञा देंगे तो मैं तुम्हें दीक्षा दे दूंगा।'

ब्राह्मी अपने भाई भरत के पास पहुंची। भरत ने उसे दीक्षित अवस्था में होने वाली कठिनाइयां बता कर दीक्षा न लेने का आग्रह किया। मगर ब्राह्मी का विचार अटल था। वह अपने विचार से विचलित नहीं हुई। तब अन्त में भरत ने ब्राह्मी को दीक्षा धारण करने की अनुमति दे दी। अनुमति पाकर राजकुमारी ब्राह्मी ने संयम धर्म को स्वीकार किया। संसार के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भोगोपभोगों का त्याग कर साध्वी बनने वाली सती ब्राह्मी धन्य हैं!

O O O

२

सुन्दरी

महासती सुन्दरी भी भगवान ऋषभदेव की ही कन्या थीं। इनकी माता का नाम सुनन्दा था। इस प्रकार ब्राह्मी और सुन्दरी सौतेली बहिनें थीं। ब्राह्मी बडी बहिन थी और सुन्दरी छोटी बहिन थी।

लोक में "सौतिया डाह" प्रसिद्ध है। एक पति की दो स्त्रियां आपस में सौत कहलाती हैं। सौतों में अकसर लडाई, झगडा, ईर्षा और द्वेष का बाजार गर्म रहता है। इस बुराई के कारण गृहस्थी नरक समान बन जाती है। सुबह कलह, शाम को कलह, दिन में कलह, रात में कलह! इस कलह के मारे कभी किसी को शांति नहीं मिलती। घर का एक भी आदमी सुखी नहीं रह पाता। यह कितनी बुरी बात है! कैसा ओछापन है? आपस में कलह करना अपने लिये दुःख का न्यौता देकर बुलाना है। जो स्त्रियां आपस में प्रेम के साथ रहती हैं, वे सुखी होती हैं।

रानी सुमंगला और सुनन्दा सौत होकर भी बडे प्रेम के साथ रहती थीं। जैसे दो सगी बहिनों में प्रेम होता है वैसे ही प्रेम उन दोनों में था। उसका असर ब्राह्मी और सुन्दरी पर भी हुआ। ये दोनों सौतेली बहिनें भी सहोदरा बहिनों की भांति बडे प्रेम से रहती थीं। एक के बिना दूसरी से रहा नहीं जाता था।

चक्रवर्ती भरत जब भगवान ऋषभदेव के दर्शन करने गये थे तब सुन्दरी भी उनके साथ थी। ब्राह्मी ने जब दीक्षा धारण कर ली तो सुन्दरी ने भी दीक्षा धारण करने का संकल्प कर लिया। मगर सुन्दरी का अन्तराय कर्म बलवान् था। इस कारण भरत ने उन्हें दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी। अनुमति न मिलने से सुन्दरी दीक्षा अंगीकार नहीं कर सकी, पर उनका मन तो संयम में ही लगा हुआ था। अतएव राजमहल में रहती हुई भी और राजसी वैभव प्राप्त होने पर भी वह योगिनी की तरह त्यागमय जीवन व्यतीत करने लगी।

कुछ दिनों बाद भरत दिग्विजय करने के लिये बाहर चले गये। उसी दिन से सुन्दरी ने दूध, दही, घी, गुड, शक्कर आदि त्याग दिया और प्रतिदिन आयंबिल करने लगी। दिग्विजय करने में भरत को साठ हजार वर्ष लग गये। तपस्विनी सुन्दरी तब तक बराबर आयंबिल करती रही। उसका शरीर सूख कर कांटा हो गया।

भरत दिग्विजय करके लौटे। उन्होंने देखा कि बहिन सुंदरी ने तपस्या की उज्ज्वल अग्नि में अपने शरीर को होम दिया है। भरत ने यह भी सोचा कि सुन्दरी ने जब अपने शरीर की ही ममता त्याग दी है तो संसार के भोग-विलास उसे कैसे लुभा सकते

हैं ! मैंने दीक्षा लेने की आज्ञा न देकर बहिन को वृथा ही परेशान किया। संसार के विषय भोग तो क्षणिक और निस्सार हैं, मैं इन भोगों की कीचड़ में पड़ा हूँ। सुन्दरी इस कीचड़ में से निकलना चाहती है। यह उत्तम ही है। मैं उसे क्यों कीचड़ में पटकने का प्रयत्न करूँ ? अब सुन्दरी को दीक्षा लेने से रोकना उचित नहीं है, वह भले ही दीक्षा अंगीकार करे– अपनी आत्मा का कल्याण करे, मैं उसके मार्ग में बाधक नहीं बनूंगा।

संयोग की बात है कि इधर भरत ऐसा विचार कर रहे थे और उधर प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव अयोध्या में फिर पधारे। भगवान नगरी से बाहर एक बगीचे में ठहरे। माली ने भरत को भगवान के आगमन की सूचना दी। भगवान के आगमन की सूचना पाकर भरत को बहुत प्रसन्नता हुई। वे बड़े ठाट-बाट से सुन्दरी आदि परिवार को साथ लेकर भगवान के दर्शन करने पहुँचे। भगवान की परम सौम्य और वीतराग की मुद्रा देखकर सबको अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। फिर भगवान का उपदेश हुआ। भगवान के मुख रूपी चन्द्रमा से उपदेश रूपी अमृत झरने लगा। उस अमृत को पान करके श्रोता अपने को धन्य समझने लगे। अहा ! कितने आनंद का वह समय रहा होगा जब साक्षात् धर्ममूर्ति तीर्थंकर भगवान उपदेश देते होंगे ! जिन्होंने वह उपदेश सुना, उनके कान धन्य हो गये। जिन्होंने भगवान की वीतरागमयी छवि को निहारा उनके नेत्र सफल हो गए, जिन्होंने भगवान के चरणों में मस्तक झुकाया, उनका मस्तक पवित्र हो गया। जिन्होंने भगवान की स्तुति की उनकी जीभ कृतार्थ हो गई। जिन्होंने भगवानके वचनों पर श्रद्धा की उनका जीवन सार्थक हो गया।

राजकुमारी सुन्दरी भगवान के परम पावन उपदेश के एक-एक शब्द को अमृत के घूंट की तरह पी रही थी। वह सोच रही थी कि कब मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा मिले और कब में भगवान के उपदेश को अमल में लाऊँ!

इसी समय भरत ने उठकर कहा—'प्रभो! मेरी बहिन सुंदरी आज से साठ हजार वर्ष पहले दीक्षा लेना चाहती थी। किन्तु मैंने उसे अनुमति नहीं दी थी। वास्तव में मैंने उसे आत्म-कल्याण के कार्य से रोक कर अच्छा नहीं किया। इसके लिये मुझे घोर पश्चात्ताप है। मैं पाप का भागी हुआ हूँ। दया कर बतलाइये कि मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार करूँ? अब मैं बहिन सुंदरी को दीक्षा लेने की अनुमति देता हूँ।

भरत की अनुमति पाकर सुंदरी को सन्तोष हुआ। किन्तु भरत को पछताते देखकर सुंदरी ने कहा—भैया! मुझे दीक्षा लेने में जो देरी लगी है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह तो मेरे ही कर्मों का फल है। मेरा अन्तराय कर्म बलवान् न होता तो आप मुझे रोकते ही नहीं। इसलिए पश्चात्ताप मत कीजिये। आपके ऊपर मुझे कोई द्वेष नहीं है।

इस तरह भरत को सान्त्वना देकर सुंदरी ने दीक्षा धारण कर ली। राजकुमारी सुंदरी अब महासती सुंदरी हो गई। थोडे दिनों तक वियोग रहने के बाद ब्राह्मी और सुंदरी का फिर संयोग हो गया।

सुंदरी के भाई थे। उनका नाम बाहुबली था। जैसा उनका नाम था, वैसे ही उनमें गुण थे। वे बडे ही बलवान्, शूरवीर और तेजस्वी थे। वे भी संसार से विरक्त होकर तपस्या कर रहे थे। मगर वे भगवान की सेवा में नहीं गये थे। अलग

एकान्त में तप करते थे। बाहुबली के अट्ठानवें छोटे भाई उनसे पहले ही भगवान के पास दीक्षा ले चुके थे। अगर बाहुबली भगवान के पास जाते तो उन्हें पहले दीक्षा लेनें वाले छोटे भाइयों को भी वन्दना करनी पड़ती। इस कारण वे भगवान के पास नहीं गये थे।

मगर बाहुबली की तपस्या बडी उग्र थी। वे एक वर्ष तक अचल होकर एक ही जगह खडे रहे। उनके कंधों पर पक्षियों ने घोसलें बना लिए। उनके शरीर पर वेलें चढ़ गईं। उनके पास सिंह आते, वाघ आते, रीछ आते और आकर चले जाते। बाहुबली अपने ध्यान में मग्न खडे रहते। न आहार की सुध, न पानी की परवाह!

इतनी घोर तपश्चर्या करने पर भी उनके दिल से अभिमान दूर न होने के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था।

भगवान ऋषभदेव अपने ज्ञान से बाहुबली की यह हालत जान रहे थे। अवसर देखकर उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरी को बुलाया। उन्हें समझा कर कहा—तुम्हारे भाई बाहुबली अभिमान के हाथी पर चढे हुये हैं। तुम दोनों जाओ अभिमान-हाथी से नीचे उतारो।

भगवान की आज्ञा पाकर दोनों सतियाँ बाहुबली के पास पहुँची। उन्होंने कहा -

बीरा म्हारा गज थकी हेठा उतरो, गज चढ्या केवल न होसी रे

वन्धव गज थकी उतरो, ब्राह्मी सुन्दरी इम भाखी रे।

ऋषभ जिनेश्वर मोकली, बाहुबली तुम पासे रे॥

लोभ तजी संयम लियो, आयो वसी अभिमानो रे।

लघु बन्धव वन्दूं नहीं, काउसग्ग रह्यो शुभ ध्यानो रे।

बरस दिवस काउसग्ग रह्या, बेलडियां लिपटानी रे।
पंछी माला मांडिया, शीत ताप सुखानी रे।

अपनी बहिनों के सन्देश को सुनकर बाहुबली चौंक पड़े। वह सोचने लगे–क्या मैं हाथी पर चढ़ा हुआ हूं ? कहां है यहां हाथी ? फिर यह साध्वियां क्या असत्य कह रही हैं ?' फिर थोड़ी देर में उन्हें ख्याल आया–' अहो सतियां ठीक ही कह रही हैं। मैं अभिमान के हाथी पर चढ़ा हूं। इस अभिमान का मुझे त्याग कर देना चाहिए। उम्र में छोटे-बड़े का भेद तो शरीर से है। असल में बड़ा वही है, जिसकी आत्मा में गुण ज्यादा हों। मेरी आत्मा में अहंकार का दोष है। मेरे भाइयों ने इस दोष का त्याग कर दिया है। इसलिए वे मुझसे छोटे कैसे हुए ?

इस प्रकार सोचकर आत्मबली बाहुबली, भगवान् के पास जाने को तैयार हुए। ज्यों ही उन्होंने एक पैर आगे बढ़ाया त्यों ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अहंकार का त्याग करने से कितना लाभ होता है, यह बात बाहुबली की कथा से समझी जा सकती है।

ब्राह्मी और सुन्दरी—दोनों सतियां बाहुबली को प्रतिबोध देकर लौट आईं। इसके बाद में उन्होंने इधर-उधर घूम-घूम कर मनुष्यों को सन्मार्ग पर लगाया। स्वयं त्याग करके उन्होंने त्याग की महिमा प्रकाशित की। तप करके पापों को नष्ट करने का उपाय समझाया। राजसी भोग-विलास की वस्तुओं को ठुकरा कर उनकी निस्सारता प्रकट की। अन्त में घोर तपस्या करके कर्मों का समूल नाश किया और मुक्ति प्राप्त की। इसी कारण प्रतिदिन उनका स्मरण किया जाता है उन्हें जो स्मरण करता है, वह भी कल्याण का भागी होता है।

०००

३

चन्दनबाला

संसार में जितने भी धर्म हैं, सभी शील की महिमा का बखान करते हैं। शीलधर्म महान् धर्म है। इस धर्म का पालन करने वाली अनेक महिलाएं इस भारतवर्ष में हो गई हैं उनका नाम आज तक अमर है और सदैव अमर रहेगा। ऐसी शील-वती सतियों का चरित्र पढ़ना बड़े सौभाग्य की बात है। महा-सती चन्दनबाला का चरित बड़ा ही उज्ज्वल है। आओ बहिनों! आज तुम्हें यही चरित सुनाते हैं।

लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। आजकल के विहार प्रान्त में चम्पापुरी नाम की नगरी थी। आजकल उसे चम्पारन कहते हैं। चम्पापुरी के राजा दधिवहन थे। महारानी का नाम धारिणी था। इन्हीं धारिणी रानी के उदर से एक कन्या का जन्म हुआ। उस का नाम वसुमती रक्खा गया। यही कन्या वसुमती आगे चल कर अपने उत्तम गुणों के कारण चन्दनबाला कहलाई।

चम्पापुरी के पास ही कौशाम्बी नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम शतानीक था। राजा शतानीक, राजा दधिवाहन का साढ़ू, धारिणी का जीजा और वसुमती का मौसा था। मगर वह बड़ा लोभी और अन्यायी था। उसने लोभ में आकर चम्पा-नगरी पर चढ़ाई कर दी। चम्पानगरी के राजा दधिवाहन ने उसे बहुत समझाया कि युद्ध करके मनुष्यों की हत्या के भागी मत बनो। तुम अपना राज्य संभालो, मैं अपना राज्य संभालता हूं।

इस प्रकार समझाने पर भी शतानीक नहीं माना। दधि-वाहन अपनी प्रजा का खून बहाना नहीं चाहते थे, इस कारण वे राज्य छोड़ कर वन में चले गये। फिर क्या था? शतानीक की फौज ने चम्पानगरी को भी खूब लूटा और राजमहल को भी लुटा। शतानीक का एक रथी राजमहल में घुसकर दधि-वाहन की रानी धारिणी को और पुत्री वसुमती को रथ में बिठलाकर घने जंगल में ले गया।

रथी ने रानी धारिणी के सामने अपनी बुरी भावना प्रकट की, मगर रानी धारिणी पतिव्रता और शीलवती थी। उसने रथी से कहा—भाई तुम बहादुर आदमी जान पड़ते हो। बहादुर आदमी का काम धर्म की रक्षा करना है। मेरे लिये तुम भाई हो और मैं तुम्हारी बहिन हूं। भाई को बहिन पर बुरी दृष्टि नहीं डालनी चाहिए, मैं प्राण त्याग दूंगी मगर शील धर्म का त्याग नहीं करूंगी। शील धर्म मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है। इसलिये हे भाई! तुम अपना विचार बदल दो। वृथा पाप में मत पडो। मैं कायर स्त्री नहीं हूं जो प्राणों के लोभ से धर्म को छोड़ दूं। धर्म मेरे लिये सब कुछ है, प्राण

मेरे लियं कुछ भी नहीं है।

पतिव्रता धारिणी के इस कथन का रथी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका दिल पाप की कालिमा से कलंकित हो रहा था। उस पर धर्म का रंग कैसे चढ़ता ? वह रानी का शरीर छूने के लिए आगे बढ़ा। उसी समय शीलवती रानी ने अपनी जीभ पकड़कर बाहर निकाल ली। मुंह से खून की धारा बहने लगी। रानी के प्राण-पखेरू उड़ गये। रानी धारिणी ने शील-धर्म की रक्षा करने के लिये अपने प्राण दे दिए। धन्य है महा-रानी धारिणी ! ऐसी महिलाएँ जगत् में पूजनीय हैं। आज हजारों वर्ष बीत जाने पर भी संसार में उनकी कीर्ति फैली हुई है। यह उनके शीलधर्म का ही प्रताप है।

वसुमती अब अकेली रह गई। माता के प्राण त्याग देने के पश्चात् उसने सोचा-यह रथी अब मेरा धर्म नष्ट करने की कोशिश करेगा। इसलिये मुझे भी अपनी माता के मार्ग पर ही चलना चाहिये, मैं भी प्राणों का त्याग करके अपना धर्म बचाऊँगी।

ऐसा सोचकर वसुमती भी प्राण-त्याग ने के लिये तैयार हुई। मगर माता धारिणी के प्राण-त्याग से रथी की बुद्धि अब ठिकानें आ गई थी। वह घबरा गया। वसुमती को प्राण-त्यागते देखकर उसने कहा-बेटी ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने घोर पाप किया है, मैं वासना से अन्धा हो गया था। अब मैं पछतावे की आग में जल रहा हूँ।

रथी की बात सुनकर वसुमती को तसल्ली हुई। धारिणी का दाहसंस्कार करके वह वसुमती को अपनी बेटी बनाकर घर ले गया। मगर रथी की स्त्री को वसुमती का आना अच्छा नहीं

लगा। वसुमती उसके विचार को समझ गई। उसने रथी से कहा—धर्मपिता! मेरे यहाँ रहने से माता अप्रसन्न हैं। ऐसी दशा में मेरा यहां रहना उचित नहीं है। आप मुझे बाजार में ले चलें और बेच दें। मैं जहां कहीं भी रहूँगी, अपने धर्म की रक्षा कर लूंगी।

वसुमती बाजार में बिकने के लिये खडी हुई।। एक स्त्री ने उसे बीस लाख मोहरों में खरीद लिया। मगर बाद में पता चला कि खरीदने वाली स्त्री वेश्या है। वसुमती ने वेश्या के घर जाने से इन्कार कर दिया। वसुमती ने वेश्या को खूब समझाया कि आप मुझे मत खरीदो, आप मुझ से जो काम लेना चाहती हो वह मुझ से नहीं होगा। आपकी बीस लाख मोहरें व्यर्थ जाएँगी। मगर वेश्या न मानी। वह जबरदस्ती करके वसुमती को पकड़ने लगी। उसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

न जाने किधर से, अचानक ही, बहुत से बन्दर आ पहुंचे। बन्दरों ने वेश्या को बुरी तरह नोंच लिया। वेश्या का सारा शरीर लोहुलुहान हो गया। वेश्या घबरा गई। तब वसुमती के रोकने पर बन्दर भाग गये और वेश्या भी अपनी जान बचा कर भागी।

थोडी देर में एक सेठ वहाँ आये। उनका नाम धनावह था। उन्होंने वसुमती को खरीद लिया। बेटी बना कर वह उसे अपने घर ले गया। उन्होंने वसुमती के उत्तम गुण जान कर उसका नाम रख दिया—चन्दनबाला!

चन्दनबाला सेठ धनावह को अपना पिता मानती थी और सेठ उसे अपनी पुत्री समझते थे। चन्दनबाला सेठ और सेठानी

की मन लगा कर सेवा करती थी ।

एक दिन धनावह सेठ बाहर से घर में आया। चंदनबाला उसके पैर धोने लगी। सेठजी चन्दनबाला से पैर धुलवाना नहीं चाहते थे, मगर चन्दनबाला मानी नहीं। पैर धोते समय उसके सिर के बाल मुंह पर लटक गए। सेठजी ने बालों को उठाकर पीछे की ओर कर दिए। सेठानी मूला को यह बात पसन्द नहीं आई। वह चन्दनबाला और सेठजी पर शंका करने लगी। साथ ही चन्दनबाला के साथ बुरा बर्त्ताव करने लगी। मूला सेठानी बात-बात में उसे डाटती फटकारती, गालियां देती और कभी-कभी मारने दौड़ती ।

चन्दनबाला सहनशीलता की मूर्ति थी। वह बडी ही शांति से सब कुछ सहन करती थी। राजकुमारी होने पर भी आज चन्दनबाला सेठ के घर की दासी की तरह रहती थी और सेठानी के बुरे व्यवहार को अपने कर्मों का फल समझ कर सहन करती थी।

एक बार सेठजी कुछ दिनों के लिए बाहर चले गये। सेठानी ने चन्दनबाला को अपने घर से बाहर भगाने का यह अवसर अच्छा समझा। उसने सब नौकरों को भी घर से बाहर भेज दिया। घर का दरवाजा बन्द करके वह चन्दनबाला के पास पहुँची। चन्दनबाला से कहने लगी–देखने में तेरी सूरत बडी भोली है मगर तेरे दिल में पाप भरा है। सेठजी को तू पिता कहती है और पति बनाना चाहती है। मुझे माता कहकर मेरी सौत बनना चाहती है। मैं तेरी सब चालबाजी समझती हूँ। बता, उस दिन सेठजी ने तेरे बालों पर हाथ क्यों फेरा था?

चन्दनबाला ने शान्ति के साथ कहा—माताजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ। सेठजी मेरे पिता हैं। मेरे ऊपर आप वृथा शंका करती हैं। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ और जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहने की ही मेरी प्रतिज्ञा है। संसार के समस्त पुरुष मेरे भाई और पिता हैं। आप सन्देह त्याग दीजिए। मेरे वचनों पर विश्वास कीजिए।

इतना कहने पर भी मूला सेठानी की शंका दूर न हुई। उसने कैंची उठाकर चन्दनबाला के बाल कतर डाले। चन्दनबाला फिर भी शान्त बनी रही। उसने मधुर स्वर से कहा—'माताजी ! अगर बाल कतरने से आपकी शंका दूर होती है तो अच्छी बात है। मूला यह सुनकर और अधिक कुपित हो गई। उसने चन्दनबाला के प्राण लेने का निश्चय करके हथकडी-बेडी पहनाकर उसे एक भोयरे में बन्द कर दिया। बाहर से ताला जड़ दिया। इतना करके मूला अपने मायके (पीहर) चल दी।

तीन दिन बीत गये। चन्दनबाला भोयरे में भूखी-प्यासी भगवान का नाम जपती रही। उसे मूला पर क्रोध नहीं था। हाय हाय करना और रोना उसने सीखा ही नहीं था। कैसी भी विपत्ति क्यों न आ पडे, वह चट्टान की तरह अटल रहती थी। मुसीबतों को अपने पापों का फल समझकर शान्ति और धीरज के साथ सहन करती थी। चन्दनबाला भोयरे में पडी समभाव से कष्ट सहन कर रही थी।

चौथे दीन सेठजी आये। मूला मायके में ही थी। उसने चाबियों का गुच्छा भेज दिया और आप मायके में ही बनी रही। सेठजी ने चन्दनबाला को पुकारा। चन्दनबाला ने धीमी आवाज से उत्तर दिया--पिताजी मैं भोयरे में हूँ।

सेठजी भोयरे में पहुँचे। चन्दनबाला की दुर्दशा देखकर उनके संताप की सीमा न रही। वे बहुत पछताने लगे और सेठानी पर क्रोध करने लगे।

चन्दनबाला ने सेठजी का ध्यान दूसरी तरफ ले जाने के लिये कहा—'पिताजी! मैं भूखी हूँ। आपके हाथ में सब से पहले जो वस्तु आयेगी, उसी से मैं पारणा करूँगी।'

सेठजी रसोई घर में गये। वहाँ घोडों के लिये उबाले हुए उड़द के बाकलों के सिवाय और कुछ भी नहीं था। चन्दनबाला की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सेठजी वही बाकले उठा ले आए। बाकले चन्दनबाला को देकर वह हथकडी-बेडी तोड़ने के लिये लुहार को बुलाने चले गये।

भगवान महावीर उसी नगरी में विराजमान थे। उन्होंने यह अभिग्रह धारण किया था:-

१) राजकन्या हो, २) अविवाहित हो, ३) सदाचरण हो, ४) निरपराध होने पर भी जिसके हाथों में हथकड़ियां और पैरों में बेडियां पडी हों, ५) सिर मुड़ा हो, ६) शरीर पर काछ लगी हो, ७) तेला किया हो, ८) पारने के लिये उड़द के बाकले सूप में लिये हो, ९) न घर में हो न बाहर, १०) जिसका एक पैर देहली के भीतपर और एक पैर बाहर हो, ११) दान देने के लिये अतिथि की राह देख रही हो, १२) प्रसन्न हो, १३) आंखों में आंसू हों, यह तेरह बातें मिलने पर उसीके हाथ से में आहार ग्रहण करूँगा। नहीं तो नहीं।

पांच महीने बीत गये। पच्चीस दिन और ज्यादा हो गये।

पर इस अभिग्रह की पूर्ति नहीं हुई। तेरह बातें एक साथ कहीं नहीं मिलीं और भगवान निराहार ही रहे । संयोग की बात है कि आज अचानक भगवान धनावह सेठ के घर की ओर आहार की गवेषणा के लिये निकल पड़े। वहां चन्दनबाला बैठी ही थी बारह बातें तो मिल गईं, सिर्फ एक बात रह गई। चन्दनबाला की आंखों में आंसू नहीं थे। यह देखकर भगवान वापिस लौटने लगे।

भगवान को आते देखकर चन्दनबाला के हर्ष का पार न रहा। परन्तु जब वे लौटकर जाने लगे तो उसकी आंखों में आंसू आ गए। अब तेरहवीं बात भी पूरी हो गई। भगवान ने चन्दन-बाला के हाथ से आहार ग्रहण किया।

तीन लोक के नाथ भगवान महावीर स्वामी जिसके हाथ से आहार ग्रहण करें वह धन्य है! उसके पुण्य की सीमा नहीं! आज चन्दनबाला के सौभाग्य की देवों ने भी सराहना की! उसी समय आकाश में दुंदुभि बजने लगी। देवों ने जयजयकार किया। 'सती चन्दनबाला की जय!' इन शब्दों से सारा आकाश गूंज उठा। धनावह सेठ के घर पुष्पों की और सोनैयों की वर्षा हुई। चन्दनबाला की हथकड़ी-बेड़ी आभूषण बन गई।

इस दैवी घटना से चन्दनबाला की चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। चन्दनबाला की महिमा खूब फैली। राजा शतानीक की नगरी में ही यह सब घटना घटी थी। शतानीक को पता चला कि यह कन्या मेरे साढू दधिवाहन की पुत्री वसुमती ही है। वह आदर सत्कार के साथ राजमहल में चन्दनबाला को ले गया। चन्दनबाला के उपदेश से शतानीक का दिल बदल गया। उसने दधिवाहन को उनका राज्य सौंप दिया और अत्यन्त नम्रता के साथ क्षमा मांगी। चम्पा और कौशाम्बी में आनन्द ही आनन्द छा गया।

राजा दधिवाहन आदि ने चन्दनबाला का विवाह करने का विचार किया। मगर चन्दनबाला ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य पालने का संकल्प कर लिया था। उसने अपने कल्याण के साथ जगत् का कल्याण करने की ठान ली थी। अतः भगवान महावीर से दीक्षा धारण करके वह साध्वी हो गई। चन्दनबाला सती अब उत्कृष्ट संयम पालने लगी। अपने उत्तम संयम के कारण वह भगवान की छत्तीस हजार साध्वियों की मुखिया (प्रवर्तिनी) बनी। अन्त में केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त की।

महासती चन्दनबाला संसार की श्रेष्ठतम विभूतियों में से एक है। राजमहल में उत्पन्न हुई, राजसी सुख प्राप्त हुये, फिर भी उनमें वह कभी नहीं ललचाई। कठिन से कठिन आपत्ति आने पर भी वह कभी नहीं घबराई। समस्त विपत्तियों को उसने धीरज के साथ सहन किया। जिसने उसे दुःख दिया, उस पर भी उसने कभी क्रोध नहीं किया। उसकी माता रानी धारिणी ने अपने शील की रक्षा के लिये प्राण त्याग दिये और सती चन्दनबाला ने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया। उसके शान्तिपूर्ण व्यवहार से शतानीक जैसे राजा भी सुधर गये। वह सब को सन्मार्ग पर लाने में सफल हुई। चन्दनबाला के इन सब उत्तम गुणों के कारण भगवान ने उसे छत्तीस हजार साध्वियों की नायिका बनाया और अन्त में चन्दनबाला का परम कल्याण हुआ।

धन्य हैं, धन्य हैं, सतीशिरोमणी चन्दनबाला! वह प्रातः स्मरणीय हैं, वन्दनीय हैं! जो बालिका चन्दनबाला जैसी बनेगी, उसका भी अक्षय कल्याण होगा।

४

राजीमती

यदुवंश के प्रसिद्ध महाराजा उग्रसेन की कन्या राजीमती की सगाई श्री अरिष्टनेमि के साथ हुई । अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर होने वाले थे । जन्म से ही विरक्त थे । संसार की भोगों की तरफ उनकी रुचि नहीं थी । मगर अपने बड़े भाई श्रीकृष्णजी आदि के आग्रह से यदुवंश को और जगत् को नया पाठ सिखाने के लिये वे विवाह करने को तैयार हो गये ।

विवाह का समय आया । बरात सजी । हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सभी सजाये गये । यदुवंश के क्षत्रिय राजा कीमती वस्त्र और आभूषण पहन-पहन कर बरात के लिये तैयार हुए । मंगल-गीत गाये जाने लगे । बाजे बजने लगे । अरिष्टनेमि ने सुगन्धित जल से स्नान किया । उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनाये गए । फिर वे श्रीकृष्ण के उत्तम गंधहस्ती पर सवार हुए । जिस बरात में अरिष्टनेमि दूल्हा बनें और श्रीकृष्ण जैसे बाराती हों, उसका क्या कहना है ! बरात और दूल्हा की

सजावट तथा ठाट अनोखा था। ऐसा लगता था, जैसे स्वर्ग का सारा वैभव यहीं आ गया है।

मथुरा के महाराज उग्रसेन के घर बरात जाने वाली थी। उस समय यदुवंश के बहुत से क्षत्रिय मांस खाते थे। बरातियों का सत्कार करने के लिये उग्रसेन ने बहुत-से पशु और पक्षी एक बाडे में बन्द कर रक्खे थे। बरात चलते-चलते मथुरा पहुँची और उसी रास्ते से निकली जिस रास्ते पर पशु बाडे में बन्द थे। कुमार अरिष्टनेमि ने हाथी पर बैठे-बैठे पशुओं को देखा। उन्होंने सारथी से पूछा—इन बेचारे पशुओं को बन्धन में क्यों डाल रखा है?

सारथी ने कहा—कुमार! महाराज उग्रसेन ने आपके विवाह में भोज देनें के लिये इन पशुओं को इकट्ठा किया है बरात में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें मांस के बिना भोजन अच्छा नहीं लगता।

नेमिकुमार यह उत्तर सुनकर चकित रह गये! उन्होंने कहा—मेरे विवाह में मांस का भोजन होगा! यह घोर अन्याय है, अधर्म है! जो मनुष्य अपनी जीभ के लिये पशुओं की हत्या करने पर उतारू हो जाता है, वह अत्यन्त नीच और पापी है। मेरे विवाह के निमित्त हिंसा हो, यह मुझे सहन नहीं होगा।

कुमार की इच्छा देखकर सारथी ने वाडे के द्वार खोल दिये। प्रसन्न होकर पशु भाग गये। पक्षी उड़ गये। यह देखकर कुमार नेमिनाथ बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने अपने आभूषण उसे इनाम में दिए।

मगर इतने से कुमार को पूरी शांति नहीं हुई । उन्होंने सोचा इस प्रकार के हत्याकांडों को रोकने के लिये मुझे कोई प्रभावशाली काम करना चाहिए। अगर मैं विवाह करना भी अस्वीकार कर दूंगा तो सब लोगों पर प्रभाव पड़ेगा। यह सोच-कर उन्होंने विवाह किए बिना ही लौट जाने का निश्चय कर लिया। देखते-देखते कुमार वापिस लौट गए।

राजकुमारी राजीमती अपने महल के छज्जे से यह सब दृश्य देख रही थी। नेमिकुमार को वापिस लौटते देखकर वह बेहोश हो गई। सब जगह खलबली मच गई।

नेमिकुमार के पिता महाराज समुद्रविजय तथा श्रीकृष्ण आदि भागे-भागे उनके पास गये। उन्होंने बहुत समझाया। पर नेमिकुमार ने एक न सुनी। वे संसार के भोग-विलासों से विरक्त तो थे ही, अब उन्हें छोड़ देने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। लौट कर अपने महल में आ गए!

महाराज उग्रसेन, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण आदि सभी को बहुत दुःख हो रहा था। अचानक रंग में भंग हो गया। मगर राजीमती की हालत सब से भिन्न थी। वह न रोई और न उसने हाय-हाय मचाई। उसके चेहरे पर गम्भीरता छाई थी। वह अपने भविष्य का विचार कर रही थी। उसने मन ही मन निर्णय कर लिया था कि अब इस जीवन में वह किसी भी पुरुष को अपना पति नहीं बना सकती।

राजीमती की सखियां उसे घेर कर बैठी थीं। एक ने कहा—बहिन! चिंता काहे की? नेमिकुमार चले गये तो जाने दो। संसार में एक से एक सुन्दर राजकुमार मौजूद हैं। तुम्हारे साथ विवाह करके कौन अपने को भाग्यशाली नहीं समझेगा?

दूसरी सखी बोली–शरीर से काले-कलूटे नेमिकुमार को इतना अभिमान कि वह हमारी सखी को अनव्याही छोड़ कर भाग गए ! अच्छा हुआ। हमारी राजीमती को अब गोरा पति मिलेगा।

सखियों की ये बातें राजीमती को सहन नहीं हुईं। उसने कहा–भोली बहिनो ! तुम समझती नहीं हो। मेरा विवाह तो उसी दिन हो चुका, जिस दिन मैंने कुमार को अपने दिल में पति मान लिया था। उसी दिन मैं उनकी हो चुकी। संसार के और सब पुरुष मेरे भाई और पिता के समान हैं। तुम कहती हो कि कुमार काले हैं मगर तुम उनका हृदय नहीं पहचानती। वह कितना दयालु और कोमल है ! जो हृदय पशु-पक्षियों का दुःख सहन नहीं कर सका। वह क्या मुझे दुःख देने की इच्छा करेगा ? नहीं, यह असम्भव है। विवाह करने में कौन-सा बड़ा सुख है ? अनादि काल से भोग भोगते-भोगते भी आज तक तृप्ति नहीं हुई, तो क्या अब तृप्ति हो जायगी ? सच्ची तृप्ति और शान्ति तो त्याग में है। इसलिए तुम मेरी चिन्ता मत करो। कुमार धन्य हैं, जिन्होंने गूंगे पशुओं की रक्षा के लिए इतना त्याग किया है। वे दीनानाथ हैं। परम दयालु हैं। उनकी निन्दा करने से जीभ कलंकित होगी।

इसके बाद राजीमती की माता वगैरह ने भी उसे विवाह करने के लिए बहुत समझाया। मगर राजीमती के सामने किसी की नहीं चली।

नेमिकुमार के एक छोटे भाई थे। उनका नाम था–रथनेमि। रथनेमि ने सोचा–राजीमती सुन्दरी कन्या है। गुणवती है। नेमिकुमार विवाह करना नहीं चाहते तो मैं उससे विवाह

करलूं। ऐसा सोचकर रथनेमि ने राजीमती के पास एक दूती भेजी। राजीमती ने दूती से कहा-तुम जाओ और कुमार रथ-नेमि को ही भेज देना। कह देना कि साथ में कोई पीने की वस्तु लेते आवें।

रथनेमि, राजीमती के पास पहुँचा। उसके दिल में बडी उमंग थी, बडी आशा थी। सोने के थाल में, रत्नों से जड़ा कटोरा था। उसमें पीने की सुगंधित वस्तु थी। राजीमती ने पहले ही कोई ऐसी चीज खा ली थी, जिससे वमन हो जाय। रथनेमि द्वारा लाई हुई वस्तु पीकर राजीमती ने उसी कटोरे में वमन कर दिया। वमन करके रथनेमि से कहा-लीजिए कुमार, इसे आप भी पी लीजिए।

रथनेमि को बहुत क्रोध आया। उसने कहा—राजीमती, मुझे अपने घर पर बुलाकर मेरा तिरस्कार करती हो? क्या मैं कुत्ता या कौआ हूँ?

रामजीती नें कहा-राजकुमार, क्रोध न कीजिए। मैं तो आपके प्रेम की परीक्षा करना चाहती हूँ।

रथनेमि बोला-क्या परीक्षा करने का यही उपाय है?

राजीमती-इसमें हानि क्या है? आप वमन की हुई एक वस्तु से इतनी घृणा करते हैं और दूसरी को ग्रहण करना चाहते हैं! आपका विवेक मेरी समझ में नहीं आता।

रथनेमि-सो कैसे? मैंने किस वमन की हुई वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा की है?

राजीमती-शान्ति के साथ सोचिए। आपके बडे भाई नेमिकुमार ने राजीमती को वमन कर दिया है। उसे आप ग्रहण

करना चाहते हैं या नहीं ? क्या ऐसा करना कुलीन जनों को शोभा देता है ? रथनेमि समझ गया । उसे अपने किए पर पश्चात्ताप हुआ । राजीमती के शीलधर्म की सराहना करता हुआ रथनेमि अपने घर लौट गया ।

कुछ समय बाद अर्थात् एक वर्ष तक वर्षी दान देकर भगवान अरिष्टनेमि ने संसार त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली। रथनेमि ने भी उनके साथ दीक्षा ग्रहण की । तीव्र तपस्या के प्रभाव से भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भगवान जगत् का कल्याण करने के लिए धर्म का उपदेश देने लगे ।

उसी समय राजीमती ने अपनी सात सौ सखियों के साथ भगवान की सेवा में पहुंच कर दीक्षा ग्रहण कर ली और सदा के लिए संसार से नाता तोड़ लिया ।

एक बार सती राजीमती गिरनार पर्वत पर भगवान के दर्शन करने जा रही थी । अचानक भयानक आंधी आई। मूसलधार वर्षा होने लगी । काली घटाओं के कारण अन्धकार छा गया । इस गड़बड़ी में राजीमती अपने साथ की साध्वियों से अलग हो गई । वह अकेली रह गई । पास में एक गुफा थी। गुफा में घोर अन्धकार छाया हुआ था । राजीमती ने उस गुफा के भीतर घुसकर अपनी साड़ी सुखा लेने का विचार किया।

संयोगवश गुफा के एक कोने में बैठे हुए साधु रथनेमि ध्यान कर रहे थे । राजीमती का उघाड़ा शरीर देखकर रथनेमि के हृदय में फिर विकार उत्पन्न हो गया । ध्यान भंग हो गया । वह उठकर राजीमती के पास आए ।

अचानक पुरुष को देखकर क्षण भर के लिए राजीमती घबरा उठी। तत्काल उन्होंने सोचा—डरने की क्या बात है? मैं वीरांगना हूं। मनुष्य की तो क्या बिसात, देव भी मेरा धर्म नहीं बिगाड़ सकता।

उसी समय रथनेमि पास में आ पहुंचे। उन्होंने कहा—राजीमती! वृथा जीवन बर्बाद करने से क्या लाभ है? चलो, हम और तुम मिलकर सुख चैन से रहें और संसार के भोग भोगें।

राजीमती पहले ही साडी पहन चुकी थी। उन्होंने कहा—रथनेमि मुनि! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो। फिर भी इस प्रकार की बात कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? जिन भोगों को तुम वमन कर चुके हो, फिर उन्हीं पर ललचा रहे हो? एक बार तुमने कहा था कि क्या मैं कुत्ता या कौआ हूं? अब तुम्हीं सोचो कि तुम क्या हो! संयम से भ्रष्ट होकर जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। इसलिये हे मुनि! अपने स्वरूप को समझो। सच्चें मार्ग पर आओ। हृदय का विकार तज दो। विकारों की आंधी में उडोगे तो कहीं ठिकाना नहीं लगेगा।'

राजीमती सती के वचनों का रथनेमि पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई। राजीमती से क्षमा मांग कर वह चले गए और अपने संयम में सदा के लिए स्थिर हो गए।

राजीमती ने जा कर भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन लिए। उनकी बहुत दिनों की अभिलाषा पूरी हुई। भगवान का उपदेश सुना। उस उपदेश के अनुसार सती राजीमती ने कठोर तप

और संयम की आराधना की । इस आराधना के कारण वह भगवान के मोक्ष पधारने से चौपन दिन पहले ही मुक्त हो गई।

महासती राजीमती की जीवनी कितनी उज्ज्वल है ! उन्होंने वासना से विहीन प्रेम का आदर्श संसार के समक्ष उपस्थित किया । ब्रह्मचर्य का पालन करने,कठोर संयम की साधना करने तथा गिरते हुए को स्थिर करने की एक अनूठी शिक्षा दी है। सती राजीमती सरीखी नारियाँ इस संसार की शोभा हैं। वंदन हो ऐसी पवित्र आत्माओं को !

०००

५

कौशल्या

प्राचीनकाल में कुशस्थलनामक एक सुन्दर नगर था। वहाँ के राजा का नाम सुकोशल था। राजा सुकोशल न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। प्रजा उन्हें पिता के समान मानती थी।

राजा सुकोशल की रानी का नाम अमृतप्रभा था। रानी का स्वभाव बहुत कोमल और मधुर था।

रानी अमृतप्रभा की कूंख से एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम अपराजित रक्खा गया। अपने माता-पिता की इकलौती संतान होने के कारण अपराजिता बडी लाड़ली थी। खूब लाड़-प्यार से इसका पालन हुआ। जब वह विद्या पढ़ने के योग्य हुई तो उसने विद्या का अध्ययन किया और चौसठ कलाओं में कुशल हो गई।

उन्हीं दिनों अयोध्या नगरी में राजा दशरथ राज्य करते थे। एक बार उन्होंने कुशस्थल पर चढ़ाई कर दी। राजा सुकोशल हार गया। राजा दशरथ को गुणी और वीर समझकर

सुकोशल ने अपनी लाडली बेटी कौशल्या का उसके साथ विवाह कर दिया। इस प्रकार राजा दशरथ के साथ रानी कौशल्या आनन्दपूर्वक रहने लगी।

राजा दशरथ की तीन रानियाँ और थीं—कैकेयी, सुमित्रा और सुप्रभा।

यथासमय महारानी कौशल्या से रामचन्द्र का जन्म हुआ। सुमित्रा के उदर से लक्ष्मण उत्पन्न हुए। कैकयी ने भरत को जन्म दिया और सुप्रभा की कूंख से शत्रुघ्न उत्पन्न हुए।

राजा दशरथ की चारों रानियाँ आपस में हिलमिल कर रहती थीं। एक दूसरी को बहिन समझती थीं।

महारानी कौशल्या चारों में बडी थी। वह अपनी तीनों सौतों को छोटी-बडी बहिन समझती और प्यार करती थी। सौतिया डाह उनमें तनिक भी नहीं थी। आपस में हिलमिल कर रहने से चारों रानियां खूब सुखी थीं। उनका समय आनन्द के साथ व्यतीत होता था!

चारों रानियों में आपस में प्रेम होनें का एक और फल हुआ वह यह कि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रूघ्न में भी अगाध प्रेम उत्पन्न हो गया। चारों भाई एक दूसरे को प्राण से भी अधिक चाहते थे। एक के बिना दूसरे को चैन नहीं मिलती थी। इस प्रकार चारों रानियां और चारों पुत्रों का आपसी प्रेम देख कर राजा दशरथ अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझते थे। उनकी गृहस्थी स्वर्ग के समान बन गई थी। सब को शान्ति, सबको सुख और सभी को प्रसन्नता थी।

एक बार की बात है। चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज

अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ ने उनका धर्मोपदेश सुना। उपदेश सुनने के बाद उन्होंने अपने पिछले जन्मों की बातें पूछीं। ज्ञानमुनि ने, अपने ज्ञान से जानकर पूर्वभव का वृत्तान्त बतला दिया। राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया।

दशरथ अपने महल में लौट आये, उन्होंने सबसे बडे पुत्र रामचन्द्र को राज्य देकर साधु बनने का विचार किया और अपना विचार सबको कह सुनाया। राजा की पवित्र भावना की सभी ने सराहना की और रामचन्द्र को राजगद्दी देनें का समर्थन किया।

जब रानी कैकेयी का स्वयंवर हुआ था उस समय दशरथ को दूसरे राजाओं के साथ युद्ध करना पड़ा था उस युद्ध में कैकेयी ने बहुत होशियारी के साथ दशरथ का रथ हांका था और दशरथ विजयी हुये थे। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने कैकेयी को मुंह-मांगा वरदान दिया था। वह वरदान कैकेयी ने आवश्यकता के समय मांग लेनें के लिए रहने दिया था।

दशरथ ने रामचन्द्र को राज्य देने की घोषणा कर दी। कैकेयी को यह बात पसन्द नहीं आई। उसने भरत को राज्य दिलाने की सोची और पहले का दिया हुआ वर मांग लिया। राजा दशरथ ने कैकयी की मांग सुनी। इससे उसके चित्त को तीव्र आघात लगा! वे मूर्छित हो गये। राम को यह बात मालूम हुई तो वे अपने पिता दशरथ के पास आए। पिता की मूर्छा दूर कर उन्होंने कहा—'पिताजी, भरत मेरा ही तो छोटा भाई है। मैं और वह दो नहीं हैं। माता कैकेयी ने अगर भरत के लिए राज्य मांग लिया है तो क्या हानि है? राजसिंहासन पर भरत

को बैठा देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। आप खेद क्यों करते हैं ? प्रसन्न होकर भरत को राज्य दीजिए। पर मेरी मौजूदगी में भरत राजा होना स्वीकार नहीं करेगा। इसलिए मैं वन-वास करूँगा। आप मेरी चिन्ता न करें। मेरे लिए जंगल और महल एक सरीखे हैं।

राम वन जाने को तैयार हो गए। लक्ष्मण और सीता ने भी राम के साथ वन जाने का निश्चय किया। अयोध्या की जनता राम को प्राणों के समान चाहती थी। इस समाचार से सब जगह शोक फैल गया।

महारानी कौशल्या को भी यह समाचार मिला। कौशल्या राम से जितना प्रेम करती थी, उतना ही अपने सौतेले लड़कों से अर्थात् लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से भी प्यार करती थी। इस कारण राम के वन जाने से उन्हें दुःख तो हुआ, किन्तु भरत को राज्य मिलने का उन्होंने विरोध नहीं किया कैकेयी पर भी उन्हें क्रोध नहीं आया। उनके लिए राम और भरत दोनों समान थे। कौशल्या महारानी ने कैकेयी के सन्तोष के लिए राम को प्रेम के साथ वन जाने की आज्ञा दे दी।

भरत ने बहुत कोशिश की कि राम वन न जाएँ और वही अयोध्या के राजा बनें। मगर राम ने किसी की नहीं सुनी वे वन के लिये रवाना हो गए।

राम ने वन में रहकर बड़े-बड़े काम किए। उनका सबसे बड़ा काम था रावण को हराना। रावण बड़ा बलशाली राजा था। उसने सीताजी का हरण किया था। रामचन्द्र ने उस पर चढ़ाई कर दी। अन्त में वह लक्ष्मण के हाथों मारा गया।

युद्ध के बाद राम फिर अयोध्या लौटे उस समय भरत ने आग्रह करके उन्हें अयोध्या का राज्य सौंप दिया । कौशल्या राजमाता हो गई ।

राजमाता होने पर भी महारानी कौशल्या का चित्त विरक्त हो गया । संसार उन्हें नीरस और दुःखों का सागर मालूम होने लगा । संसार के भोग-विलास उन्हें प्रिय नहीं थे । उन्होंने आत्मा का कल्याण करने का संकल्प किया । आखिर एक दिन उन्होंने संसार के समस्त बन्धनों को तोड़ कर फेंक दिया ! संयम अंगीकार करके वह तपस्यामय जीवन बिताने लगी । बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके अन्त में उन्होंने सद्गति पाई ।

सती कौशल्या की धीरता और उदारता सराहनीय है । उन्होने अपने परिवार में शान्ति बनाये रखने के लिए अपने बेटे को वन जाने दिया और अपनी सौत के लड़के को अपना ही लड़का समझ कर राजा बन जाने दिया । यह उदारता क्या मामूली है ? धन्य है सती कौशल्या !

०००

६

मृगावती

सती मृगावती वैशाली के प्रसिद्ध राजा चेटक की पुत्री थी। उनकी एक बहिन का नाम त्रिशला था, जिनके उदर से भगवान् महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। इस प्रकार मृगावती भगवान् की मौसी थी।

कौशाम्बी के राजा शतानीक का थोड़ा हाल चन्दनबाला सती के जीवनचरित में आ चुका है। राजा शतानीक के साथ ही मृगावती का विवाह हुआ था। वह शतानीक की पटरानी थी। मृगावती अत्यन्त सुन्दरी, गुणवती, शीलवती और धर्मपरायण थी।

उन दिनों कौशाम्बी में एक बहुत चतुर चित्रकार रहता था। चित्रकला में वह इतना निपुण था कि किसी की उंगली देख कर ही उसके शरीर का सम्पूर्ण चित्र बनाकर तैयार कर देता था। एक बार उसने रानी मृगावती का सिर्फ अंगूठा देखा और उसी के आधार पर पूरा चित्र तैयार कर लिया। चित्र तैयार

करके वह अवन्ती के राजा चण्डप्रद्योतन के पास ले गया। चण्डप्रद्योतन, शतानीक का शत्रु था और स्त्री-लोलुप भी था। मृगावती का चित्र देखकर वह मृगावती पर मोहित हो गया।

चण्डप्रद्योतन ने लोक और परलोक का विचार न करके मृगावती को प्राप्त करने के लिये कौशाम्बी पर चढ़ाई कर दी। शतानीक की थोडी सेना उसकी विशाल सेना का सामना करने में समर्थ नहीं थी। इसलिये शतानीक ने नगरी के द्वार बन्द करवा दिए और भीतर रह कर लड़ने लगा। मगर लड़ाई का अन्त नहीं हुआ। शतानीक हिम्मत हार गया। भय के कारण वह बीमार हो गया और अन्त में उसकी मृत्यु हो गई।

अपने पति की मृत्यु से मृगावती को बहुत दुःख हुआ। उधर चण्डप्रद्योतन उसे जबर्दस्ती ले जाने के लिये फौज लिये तैयार था और इधर पति की मृत्यु हो गई! ऐसी विषम स्थिति में मृगावती की क्या हालत हुई होगी, सो कौन कह सकता है? लेकिन मृगावती वीरांगना थी। उसे अपने शील-शक्ति पर पूरा भरोसा था। उसने विचार किया—'मैंने आजीवन शील-धर्म पालने का पक्का निश्चय किया है। चण्डप्रद्योतन तो [illegible] का कोई भी राजा, महाराजा यहाँ तक कि इन्द्र भी, मेरे शील को नहीं बिगाड़ सकता। शील के सामने तलवार और बन्दूकें बेकार हो जाती हैं। वास्तव में जो स्त्री स्वयं अपने शील को नहीं भंग करना चाहती, उसका शील कोई भी भंग नहीं कर सकता। मैं अपने प्राणों को भले छोड़ दूंगी, मगर शील नहीं छोडूंगी।'

उस समय मृगावती का पुत्र उदयन छोटा था। [illegible]

ने सोचा-अगर मुझे प्राण त्यागने पडे तो उदयन विपत्ति में पड़ जायगा। इस कारण ऐसा कोई रास्ता ढूंढना चाहिए जिससे मेरे शील की भी रक्षा हो जाय और उदयन का पालन-पोषण करने के लिए मेरे प्राणों की भी रक्षा हो जाय। अन्त में मृगावती ने रास्ता खोज निकाला। उसने राजा चण्डप्रद्योतन को कहला दिया-आपके भय से मेरें पति का देहान्त हो गया है। मैं लोक-रूढी के अनुसार अभी शोक में हूं। मेरा पुत्र उदयनकुमार अभी छोटा है। इसलिए जब मैं शोक से मुक्त हो जाऊँगी और उदयन राज्य संभालने योग्य हो जायगा, तब मैं स्वयं आपके पास आऊँगी। इस समय आप चले जाइए। अगर आपने मेरी बात न मानी तो मैं प्राण त्याग दूंगी। आपकी इच्छा पूरी नहीं हो सकेगी।'

इस तरह सती मृगावती ने बडी चतुराई से चण्डप्रद्योतन को लौटा दिया। मगर चण्डप्रद्योतन मृगावती को भूलने वाला नहीं था। कुछ समय बीतने के बाद उसने मृगावती को ले आने के लिए अपने सेवक भेजे। तब मृगावती ने उनसे साफ-साफ कह दिया-मैंने अपने शील की रक्षा के लिये ही उस समय ऐसा कहा था। मैं विधवा हूँ। विधवा का कर्त्तव्य है कि वह जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करे। मैं ऐसा ही करूँगी। संसार के समस्त पुरुष मेरे लिए पिता, भाई या पुत्र के समान हैं। चण्डप्रद्योतन मेरे भाई हैं। जाकर कह दो कि अपने पापमय विचारों को छोडो।

चण्डप्रद्योतन को जब यह बात मालूम हुई तो उसने फिर मृगावती के पास अपना दूत भेजा। दूत से कहलाया-मृगावती! अगर अपना और अपने पुत्र का भला चाहती हो तो जल्दी मेरी

बात मान लो। नहीं तो तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा।

मगर मृगावती उसकी बातों से नहीं डरी। उसने सब प्रकार का उचित प्रबन्ध कर दिया। फिर वह शील की रक्षा के लिए नमस्कार-मन्त्र का जाप करने लगी।

शीलधर्म के प्रभाव से और नमस्कारमन्त्र के प्रभाव से उसी समय कोशाम्बी में भगवान महावीर पधार गये। भगवान के प्रभाव से सभी प्राणी आपसी वैर-भाव भूल गये। राजा चण्ड-प्रद्योतन भगवान का उपदेश सुनने आया। सती मृगावती भी अपने पुत्र को साथ लेकर भगवान का दर्शन करने गई।

सब ने भगवान का उपदेश सुना। भगवान का उपदेश सुनकर मृगावती ने उसी समय दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। चण्डप्रद्योतन पर भी भगवान के उपदेश का असर पड़ा। उसकी पाप-भावना नष्ट हो गई। उसने कुमार उदयन को राजसिंहासन पर बिठला कर उत्सव मनाया। मृगावती ने कहा—'आप मेरे धर्म के भाई हैं। उदयन पर इसी तरह कृपा रखना।

इसके बाद मृगावती ने दीक्षा धारण कर ली। वह सती से महासती बन गई। महासती चन्दनबाला की आज्ञा में विचर कर संयम और तप की आराधना करने लगी।

एक बार भगवान महावीर फिर कोशाम्बी नगरी में पधारे। महासती चन्दनबाला भी अपनी शिष्याओं के साथ वहाँ आईं। एक दिन सती मृगावती भगवान के दर्शन करने गई थीं। उन्हें लौटने में देरी हो गई। प्रवर्तिनी चन्दनबाला ने उन्हें उपालंभ देते हुए कहा—साध्वियों को सूरज छिपने के बाद उपाश्रय से बाहर नहीं रहना चाहिए।

मृगावती ने अपना दोष स्वीकार किया। उन्हें खूब पश्चा-त्ताप भी हुआ। इसके बाद सती चन्दनबाला और दूसरी सब सतियां यथास्थान सो गईं। मगर मृगावती पश्चात्ताप ही करती रहीं। पश्चात्ताप करते-करते उन्हें केवलज्ञान हो गया।

अन्धेरी रात थी। उसी समय सती मृगावती ने अपने ज्ञान से एक काला सांप देखा। वह चन्दनबाला के हाथ की तरफ आ रहा था। यह देख कर मृगावती ने चन्दनबाला का हाथ ऊपर उठा लिया। चन्दनबाला की नींद खुल गई। मृगावती ने सांप की बात सुना कर नींद में बाधा डालने के लिए क्षमा मांगी। चन्दनबाला ने पूछा–अन्धेरे में सांप कैसे देख लिया? मृगावती–आपकी कृपा से मेरे सब दोष नष्ट हो गए हैं। मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। चन्दनबाला ने उसी समय मृगा-वती को वन्दना की। अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी।

अन्त में आयु पूर्ण होने पर मृगावती ने मुक्ति प्राप्त की।

ooo

७

सुलसा

राजगृही नगरी में एक सारथी था। उसका नाम था-नाग। सती सुलसा उसी की पत्नी थी। नाग सारथी ने यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि मैं दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करूंगा। सुलसा और नाग, दोनों आपस में प्रेम के साथ सुख से रहते थे। सुलसा सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसे क्रोध कभी नहीं आता था। सिर्फ एक बात की कमी थी। सुलसा के कोई संतान नहीं थी।

एक बार नाग सारथी ने किसी सेठ के आंगन में बालकों को खेलते देखा। नाग को विचार आया—'बालकों के बिना घर सूना है। सब प्रकार के सुख होने पर भी पुत्र के बिना संसार फीका लगता है।' इस प्रकार सोचकर सारथी सन्तान के लिये देवी-देवताओं की आराधना करने लगा।

सुलसा समझदार स्त्री थी। उसने अपने पति से कहा—नाथ! कर्म के अनुसार ही पुत्र और धन आदि की प्राप्ति होती

है। देवी या देवता के पास पुत्र कहां रक्खे हैं जो वे आपको दे देंगे? जान पड़ता है कि मेरे पेट से सन्तान उत्पन्न नहीं होगी। इसलिये आप दूसरा विवाह कर लीजिए।

नाग ने कहा-मैं इस जीवन में दूसरा विवाह नहीं करूँगा।

सुलसा बोली-तो धर्म की आराधना कीजिये। धर्म से ही इस लोक और पर-लोकसम्बन्धी सुखों की प्राप्ति होती है।

पति और पत्नी दोनों विशेष रूप से धर्म का पालन करने लगे। दोनों का जीवन सुख और शान्ति से बीतने लगा।

एक वार स्वर्ग में देवों की सभा जुडी थी। इन्द्र ने सुलसा की प्रशंसा करते हुये कहा-राजगृही नगरी की सुलसा श्राविका बहुत शान्तस्वभाव की है। उसे क्रोध कभी छूता भी नहीं है। धर्म में बहुत दृढ़ है। देव भी उसे नहीं डिगा सकते।

सुलसा की प्रशंसा सुनकर एक देव ने उसकी परीक्षा करने का विचार किया। वह राजगृही में आया। उसने दो साधुओं का रूप बनाया और सुलसा के घर जा पहुँचा। साधुओं को देखकर सुलसा बहुत प्रसन्न हुई। उसने हाथ जोड़ कर कहा-मुनिराज! आज मैं भाग्यशालिनी हूँ कि आपके चरणों से मेरा घर पवित्र हुआ। किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो आज्ञा दीजिए।

मुनि ने कहा-तुम्हारे घर में लक्षपाक तेल है। लम्बा विहार करने के कारण साधु थक गए हैं। उनके लिए तेल की आवश्यकता है।

सुलसा तेल लाने के लिए भीतर गई। वह तेल के बर्त्तन को ऊपर से नीचे उतारने लगी। उसी समय देव की माया के प्रभाव से बर्त्तन हाथ से फिसल गया और नीचे गिर कर फूट गया।

उसनें दूसरा बर्त्तन उठाया तो वह भी फूट गया और तीसरा बर्त्तन भी फूट गया। तेल बिखर गया।

लक्षपाक तेल बहुत कीमती होता है। इतना नुकसान हो जाने पर भी सुलसा को न खेद हुआ और न क्रोध आया। उसने बाहर आकर साधुजी को सब वृत्तान्त सुना दिया और तेल न दे सकनें के कारण क्षमा-याचना की।

साधु-वेषधारी देव प्रसन्न हो गया। उसनें अपना असली रूप प्रकट करके कहा—सुलसा! इन्द्र नें तुम्हारी जैसी प्रशंसा की थी तुम वास्तव में वैसी ही प्रशंसा के योग्य हो। मैं तुम्हारी परीक्षा के लिए आया था। मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो इच्छा हो, मांग लो।

सुलसा सोचनें लगी—मैं देव से क्या मांगूं? फिर उसने सोचा—मेरे पति को सन्तान की बहुत अभिलाषा है। उनकें सतोष के लिये सन्तान मांग लेना उचित है। यह सोचकर उसने कहा—आप मेरे दिल की बात जानते ही हैं। फिर मुझसे क्यों कहलाते हैं?

देव सब समझ गया। उसनें सुलसा को बत्तीस गोलियां देकर कहा—एक-एक गोली खाती जाना। तुम्हें बत्तीस पुत्रों की प्राप्ति होगी।

देव चला गया। सुलसा ने सोचा—बत्तीस पुत्रों का मैं क्या करूंगी? एक ही सुयोग पुत्र हो तो काफी है। अधिक सन्तान होना अच्छा नहीं है। प्रथम तो उनके पालन-पोषण का ध्यान नहीं रक्खा जा सकता, दूसरे धर्म—कार्य में बाधा पड़ती है। अगर बत्तीस लक्षणों वाला एक ही पुत्र हो तो अच्छा है।

ऐसा सोच कर सुलसा ने बत्तीसों गोलियां एक साथ खा

लीं। उन गोलियों के प्रभाव से सुलसा के बत्तीस गर्भ रह गए। पेट में दर्द होने लगा। तब उसने देव का स्मरण किया। देव ने आकर कहा—तुमने बडी भूल की। एक ही गोली खानी चाहिए थी। अब तुम्हारे पेट से बत्तीस पुत्र उत्पन्न होंगे और उनमें से एक की मृत्यु होने पर सभी की मृत्यु हो जायगी।

सुलसा बोली—प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। अशुभ कर्म के उदय से मैंने भूल की है तब उसका फल भोगूंगी। किन्तु किसी उपाय से पेट का दर्द मिट जाय तो अच्छा!

देव ने सुलसा के पेट का दर्द शान्त कर दिया। समय पूरा होने पर बत्तीस पुत्रों का जन्म हुवा। धूमधाम से उत्सव मनाया गया। पुत्र जब पढ़ने योग्य हुए तो उन्हें सब कलाएँ सिखलाई गईं। वे समस्त कलाओं में कुशल हो गये और राजा श्रेणिक की नौकरी करने लगे।

कुछ दिनों बाद राजा चेटक के साथ युद्ध हुआ। उस युद्ध में सुलसा का एक पुत्र मारा गया। एक के मरने पर शेष सभी पुत्रों की भी मृत्यु हो गई।

माता का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। वह सभी कुछ सहन कर सकता है, पर संतान का अनिष्ट नहीं सह सकता। सुलसा बत्तीस पुत्रों का एक साथ मरण कैसे सहती? उसके दुःख का पार न रहा। वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसका रोना सुनकर आसपास के लोग भी बहुत दुखी हुए।

राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार उसके यहाँ गए और उन्होंने भी सुलसा को समझाया कहा—'बहिन सुलसा! तुम धैर्य

को पहचानती हो, फिर इतना शोक क्यों करती हो ? संसार तो इन्द्रजाल के समान है। यहाँ कौन सदैव रहने वाला है ? जो जन्म लेता है वह मरता ही है। यह जीवन खिलवाड़ है। मोह दुःख का कारण है। मोह को तजो। भगवान को भजो। इसी से सुख मिलेगा। होनहार को कोई नहीं टाल सकता। तुम्हारे रोने से पुत्र जीवित नहीं होंगे। उलटा तुम्हें पाप-कर्म का बन्ध होगा। इस लिए परमार्थ का विचार करके शान्ति धारण करो।'

कुछ समय बाद सुलसा का शोक कम हो गया। वह अब विशेष रूप से धर्म की आराधना करने लगी।

एक बार भगवान महावीर स्वामी चम्पानगरी में पधारे थे। अम्बड़ नामक एक विद्याधारी श्रावक ने भगवान का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसने कहा—प्रभो ! आपका उपदेश सुन-कर मैं धन्य हुआ। अब मैं राजगृही जा रहा हूँ।

भगवान ने कहा—राजगृही में सुलसा नाम की श्राविका है। वह धर्म में बहुत दृढ़ है।

अम्बड़ सोचने लगा—स्वयं भगवान अपने श्रीमुख से जिसकी प्रशंसा करें तो वह धन्य है ! सुलसा श्राविका अत्यन्त पुण्य-शालिनी है। मगर उसकी परीक्षा करके देखना चाहिये।

अम्बड़ श्रावक ने विद्या के बल से एक संन्यासी का रूप बनाया। वह मोटा-ताजा और मस्त संन्यासी सुलसा के घर आया और कहने लगा—सुलसे ! मुझे भोजन दो। तुम्हें धर्म होगा।

सुलसा—भोजन देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मगर अनुकम्पा समझकर दे सकती हूं।

संन्यासी को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। वह लौट गया। उसने विद्या के बल से आकाश में पद्मासन रचा और लोगों को

आश्चर्य में डालने लगा। लोगों ने उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया, मगर उसने आमंत्रण स्वीकार न करते हुए कहा—मैं सुलसा के घर भोजन करूँगा और किसी के घर नहीं।

लोग भागे-भागे सुलसा के घर पहुँचे। सुलसा से कहा—भूखा संन्यासी तुम्हारे घर भोजन करेगा। तुम्हारा भाग्य खुल गया!

सुलसा ने कहा—मैं इसे ढोंग मानती हूँ।

सुलसा के उत्तर से लोगों को आश्चर्य हुआ। वे लौट कर अम्बड़ के पास गये और कहने लगे कि सुलसा तुम्हें ढोंगी कहती है।

अम्बड़ मन ही मन सन्तुष्ट हुआ। उसने संन्यासी का रूप पलट कर जैनमुनि का रूप धारण किया और फिर सुलसा के घर गया। अब की बार सुलसा ने भक्तिभाव के साथ मुनि का सत्कार किया।

अम्बड़ ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। उसने भगवान द्वारा की हुई प्रशंसा की बात कहकर सुलसा को धन्य-वाद दिया। कहा—देवी तुम्हारा जीवन धन्य है। तुम भाग्य-शालिनी हो। भगवान तुम्हारे सम्यक्त्व की प्रशंसा करते हैं।

सुलसा ने धर्म में दृढ़ होने के कारण तीर्थंकर गोत्र बांधा। आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग में गई और आगामी चौबीसी में वह पन्द्रहवीं तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करेगी।

वास्तव में जो स्त्री ढोंगी साधुओं के चक्कर में नहीं पड़ती और सन्तान पाने के लिये भैरो-भवानी की आराधना न करके धर्म की ही आराधना करती है, वह सुखी होती है। धर्म के प्रताप से उसके सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

०००

८

सुभद्रा

जिस घर में पति और पत्नी के विचार समान होते हैं, दोनों की धर्मश्रद्धा एक-सी होती है, उस घर में सुख-शान्ति का निवास होता है। जहां एक पूरब को और दूसरी पच्छिम को जाती है वहां न शान्ति रहती है, न सुख रहता है। पति और पत्नी अलग-अलग धर्मों को मानते हों तो सन्तान किसी भी एक धर्म में स्थिर नहीं हो पाती। इसी कारण यह आवश्यक समझा जाता है कि विवाह सम्बन्ध एक ही धर्म के अनुयायियों में होना चाहिए।

वसन्तपुर के राज्यमन्त्री जिनदास और उनकी पत्नी तत्त्वमालिनी जैनधर्म के अनुयायी थे। दोनों धर्मप्रेमी थे। धर्म की ओर उनकी गाढी श्रद्धा थी। अतएव उनकी पुत्री सुभद्रा पर भी उनके धर्मप्रेम का गहरा प्रभाव पड़ा। सुभद्रा ने बचपन में ही धर्मशास्त्र सीख लिया और धर्मक्रिया करने में उत्साह दिखलाया।

सुभद्रा की धर्म की ओर रुचि देखकर उनके माता-पिता ने विचार किया-जैनधर्म के अनुयायी वर के साथ सम्बन्ध करने से ही सुभद्रा का जीवन सुखमय हो सकता है। ऐसा विचार कर वे जैन वर की खोज करने लगे।

वसन्तपुर व्यापार का केन्द्र था। अनेक नगरों से वहाँ व्यापारी आते रहते थे। एक बार चम्पानगरी का एक व्यापारी वहाँ आया। उसका नाम बुद्धदास था। वह बौद्धधर्म को मानता था। उसने एक दिन सुभद्रा को देख लिया। पूछताछ करने पर उसे मालूम हो गया कि सुभद्रा अभी कुंवारी है। राजमन्त्री की लड़की है। जैनधर्म के अनुयायी वर के साथ उसका सम्बन्ध होगा।

बुद्धदास ने सुभद्रा के साथ विवाह करने का विचार किया। वह जैन नहीं था, परन्तु उसने जैन होने का ढोंग किया, वह जैन मुनियों के पास जाने लगा। दिखावटी विनय-भक्ति करके उनसे ज्ञान सीखने लगा। धीरे-धीरे सब लोग उसे जैन समझने लगे। जिनदास ने उसे सुभद्रा के योग्य सुपात्र वर समझ कर सुभद्रा का विवाह कर दिया।

विवाह हो जाने पर बुद्धदास कुछ दिन वहीं रहा। फिर जिनदास की आज्ञा लेकर अपने घर लौट आया। घर आने पर सुभद्रा को पता चला कि बुद्धदास वास्तव में बौद्ध धर्म को मानने वाला है, उसके सभी कुटुम्बी भी जैन नहीं, बौद्ध हैं। सुभद्रा मन ही मन सोच-विचार में पड़ गई। फिर उसने निश्चय किया- जो कुछ हुआ सो हुआ। मैं अपने धर्म पर दृढ़ रहूंगी। प्राणान्त कष्ट आने पर भी मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूंगी। विरोधी जनों के बीच में रहकर भी अपने धर्म की रक्षा करने में ही मेरी महत्ता होगी।

इस प्रकार निश्चय करके वह नियमित रूप से अपनी धर्म-क्रियाएं किया करती और सबके साथ विनय, नम्रता और प्रेम से बर्त्ताव करती थी।

मगर सुभद्रा की सासू को यह अच्छा नहीं लगा। उसने सुभद्रा से कहा-मेरे घर में यह ढोंग नहीं चलेगा। अपना भला चाहती है तो अपनी धर्मक्रिया छोड़ दे और हमारे धर्म को स्वीकार कर ले। ऐसा नहीं करेगी तो दण्ड भोगना पडेगा।

सुभद्रा ने कहा-सासूजी! जैनधर्म मेरी रग-रग में रम रहा है। मैं प्राण छोड़ सकती हूँ मगर जैनधर्म नहीं छोड़ सकती।

इस उत्तर से सुभद्रा की सासू और चीढ़ गई। उसने कोई झूठा लांछन लगाकर सुभद्रा को रास्ते पर लाने का विचार किया।

एक दिन जिनकल्पी मुनि नें भिक्षा के लिए सुभद्रा के घर में प्रवेश किया। सुभद्रा ने भक्तिपूर्वक आहारदान दिया। मुनि की आंख में से पानी गिर रहा था। सुभद्रा ने देखा और वह समझ गई कि आंख में किरकिरी घुस गई है। उसने बडी साव-धानी के साथ अपनी जीभ से किरकिरी बाहर निकालते समय सुभद्रा के ललाट पर लगी हुई कुंकुम की बिन्दी मुनिराज के ललाट पर लग गई। सुभद्रा की सासू ने यह देख लिया और इस मौके से लाभ उठाने का निश्चय कर दिया। उसने अपने लड़के से कहा--बेटा! देख अपनी बहू की करतूत। यह बहू साधु के वेष में गुण्डों को घर में बुलाती है। तू चुपचाप बैठा देख रहा है। ऐसा करने से अपने कुल की इज्जत नहीं रहेगी।

सुभद्रा के पति बुद्धदास नें सुभद्रा के साथ सारे सम्बन्ध तोड़ दिये। तब सुभद्रा ने सोचा--बिना कारण मुझे दोष लगा

और मुनि को भी कलंक लगा। यह बात मैं सहन नहीं कर सकती। इस कलंक को दूर करने के लिए मुझे कोई उपाय अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार सोचकर वह तेले का तप करके कायोत्सर्ग में स्थित हो गई। एक दिन बीता, दूसरा दिन बीत गया और तीसरा दिन भी समाप्त हो गया। तब आधी रात के समय शासनदेवी प्रकट हुई। देवी ने कहा--सती तू सच्ची शीलवती है। धर्म पर तेरी दृढ़ श्रद्धा है। मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। कोई वर मांग।

सुभद्रा ने कहा--देवी! मुझे वर की आवश्यकता नहीं है। मेरे और मुनिराज के सिर पर झूठा कलंक लगा है। वह दूर होना चाहिए। बस, इतना ही मैं मांगती हूँ।

देवी ने कहा—ठीक है। ऐसा ही होगा।

दूसरे दिन द्वारपाल नगर के फाटक खोलने लगे तो बहुत जोर लगाने पर भी वे हिले तक नहीं। द्वारपाल पच-पच कर हार गये। अन्त में वे राजा के पास पहुँचे। राजा ने सब बातें सुनकर कहा—लुहारों और सुथारों को बुलाकर फाटक खुलवा लो। फिर लुहार आए। सुथार आए। मगर फाटक तो मानों वज्र के हो गये थे। फाटक उनसे भी नहीं खुले। वे भी थक कर रह गये। तब राजा ने कहा--हाथी छोड़ दो और फाटक तुड़वा डालो। फिर क्या था! मदोन्मत्त हाथी छोडे गए। हाथियों ने अपना पूरा जोर लगाया, मगर फाटक टस से मस नहीं हुए। राजा और प्रजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। सभी चिन्ता में पड़ गये। न कोई बाहर निकल सकता था और न भीतर घुस सकता था। लोगों के काम-काज बन्द हो गये। सब जगह घबराहट मच

गई। लोग सोचने लगे-अब न जाने क्या दुर्दशा होने वाली है!

इसी समय आकाश से वाणी सुनाई दी-'अगर कोई सती स्त्री, कच्चे सूत के धागे से चालनी को बांध कर कुएं से जल निकाल कर फाटकों पर छिड़केगी तो फाटक तुरन्त खुल जाएँगे।'

राजा ने नगर भर में घोषणा करवा दी कि जो सती इस काम को पूरा करेगी, उसका राज्य की ओर से खूब सत्कार किया जायगा।

अनेक स्त्रियां जल निकालने के लिए कुएँ पर पहुँची। मगर कच्चे सूत के धागे से, चालनी में पानी निकाल लेना मामूली बात नहीं थी। पहले तो कच्चा सूत ही टूट जाता था और चालनी कुएं में पड़ जाती थी। कदाचित् सूत न टूटता तो चालनी के छेदों में से सारा पानी चू जाता था। इस कठिनाई के कारण कोई भी स्त्री पानी नहीं निकाल सकी। राजा ने अपनी रानियों को पानी निकालने के लिये भेजा, मगर उनसे भी पानी नहीं निकला। तब राजा और प्रजा को बडी निराशा हुई।

उधर राजा की घोषणा सुनकर सुभद्रा अपनी सासू के पास पहुँची। उसने पानी निकालने के लिये जाने की आज्ञा मांगी।

सुभद्रा की बात सुनकर उसकी सासू आगबबूला हो गई। उसने कहा—चल, चल रहने दे। अपने घर में बैठो रह। मैं जानती हूं कि तू बडी सती है! वहां जाकर और हमारी हँसी कराएगी।

सभद्रा बोली-सासूजी, सारे नगर की स्त्रियां वहां जा चुकी हैं। किसी से फाटक नहीं खुले। मुझसे भी नहीं खुलेंगे तो

में भी और स्त्रियों जैसी कहलाऊँगी। कोई विशेष बदनामी नहीं होगी। लेकिन मुझे विश्वास है कि में अपने शील के प्रभाव से फाटक खोल दूंगी आखिर सुभद्रा को जाने की आज्ञा मिल गई। वह कुएं पर आई। घबराये हुए लोग टकटकी लगाकर उसकी तरफ देखने लगे। सुभद्रा ने कच्चे सूत से चालनी बांध कर कुएं में डाली और जल भरी हुई चालनी ऊपर खींच ली।

लोगों के हर्ष और आश्चर्य का पार नहीं रहा। सब लोग सुभद्रा के सतीत्व का बखान करने लगे। और कहने लगे-सती सुभद्रा की जय !

जय-जयकार की ध्वनि में सुभद्रा फाटक की तरफ रवाना हुई। उसने नमस्कार मन्त्र का स्मरण करके जल छिड़का और तत्काल फाटक खुल गया।

राजा और प्रजा नें सती के पैर छुए। सभी जगह सुभद्रा की प्रशंसा फैल गई। सुभद्रा की सासू ने भी यह समाचार सुना। उसनें अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी। सुभद्रा के सभी घर वालों ने जैनधर्म को ग्रहण किया। कुछ दिनों बाद सती सुभद्रा ने संसार का मोह त्याग दिया। वह साध्वीं वन कर आत्मा के कल्याण की साधना करने लगी। तीव्र तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की।

धन्य है सुभद्रा सती, जो कष्ट आने पर भी धर्म से नहीं डिगी। जो कष्टों को सहन करके भी अपने धर्म पर अटल रहता है उसकी विजय होती है। उसके सारे कष्ट मिट जाते है। उसे सर्व श्रेष्ठ सुख की प्राप्ति होती है।

०००

१

शिवा

सती शिवा राजा चेटक की बेटी थी। उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योतन के साथ उसका विवाह हुआ। शिवा बड़ी पतिव्रता और बुद्धिमती थी। समय-समय पर राजा को भी अच्छी सलाह दिया करती थी। राजा चण्डप्रद्योतन ने उसके अनेक गुणों को देखकर उसे पटरानी बनाया था।

राजा चण्डप्रद्योतन का मन्त्री भूदेव था। राजा और मंत्री में गहरा प्रेम था। इस प्रेम के कारण भूदेव रनवास में भी जाया-आया करता था। मगर भूदेव के दिल में पाप आ गया। शिवा देवी की सुन्दरता देखकर वह धर्म को भूल गया। एक बार रानी की दासी को कुछ लोभ दिखाकर उसने अपनी तरफ मिला लिया और अपना बुरा विचार रानी से कहलाया।

रानी ने मन्त्री का पापमय विचार सुनकर सोचा—पुरुषों का हृदय कितना मलीन होता है! काम के वश में हुए पुरुष

अच्छा-बुरा भी नहीं सोचते ! ऐसे पापी पुरुषों को धिक्कार है !

इस प्रकार विचार कर शिवा देवी ने उस दासी को खूब फटकारा। दासी डर की मारी कांपने लगी। वह अपने अपराध के लिए क्षमा मांगने लगी।

कुछ दिनों बाद राजा चण्डप्रद्योतन को किसी काम से बाहर जाना पड़ा। मन्त्री बीमारी का बहाना करके उज्जैन में ही रह गया। जब राजा चला गया तो मन्त्री राजमहल में जा पहुँचा। शिवादेवी के पास पहुँच कर उसने अपने बुरे विचार प्रकट किए। मगर शिवा देवी तो पक्की पतिव्रता थी। वह अपने धर्म से तिल भर भी नहीं डिगी। उसने मन्त्री को डांट-फटकार कर राजमहल से बाहर निकलवा दिया।

पापी पुरुष में बल नहीं होता। पापी का हृदय कमजोर होता है। रानी ने मन्त्री को राजमहल से निकलवा दिया तो वह बहुत भयभीत हुआ। भय के कारण वह बीमार पड़ गया। वह सोचने लगा—राजा के आने पर रानी सब हाल उससे कहेगी। राजा नाराज होकर न जाने मेरी कैसी दुर्दशा करेगा !

थोड़ी ही दिनों बाद राजा बाहर से लौट आया। लौटते ही उसने मन्त्री को बुलवाया। मगर मन्त्री डर के मारे राजा के पास आने का साहस नहीं कर सका। उसने अधिक बीमारी का बहाना कर लिया। राजा को मन्त्री के बिना अच्छा नहीं लगता था। वह रानी शिवा देवी को साथ लेकर संध्या के समय मन्त्री के घर पहुँचा। राजा का आना सुनकर मन्त्री भय से अधमरा-सा हो गया। उसने सोचा—हाय मैंने कैसा बुरा काम किया ! मन में पाप लाकर मैंने अपनी जिन्दगी बिगाड़ ली। अब राजा न

मालूम क्या करेगा ?

रानी शिवा देवी बड़ी गम्भीर थी, उसने मन्त्री के पाप की बात अभी तक राजा से नहीं कही थी। इसलिये राजा को मंत्री पर पहले की तरह ही प्रेम था। राजा ने मन्त्री को पलंग पर पड़ा देखा तो उसे बहुत दुःख हुआ। प्रेम की अधिकता के कारण राजा खुद ही मन्त्री की सेवा करने लगा। अपने पति को सेवा करते देख कर रानी शिवा देवी भी उसकी सेवा करने लगी।

रानी के इस व्यवहार को देख कर मन्त्री को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा— रानीजी का हृदय बहुत विशाल है, बहुत गम्भीर है और बहुत क्षमाशील है। मैंने इनके साथ बुरा बर्त्ताव किया और यह मेरे साथ कितना अच्छा व्यवहार कर रही हैं!

इस प्रकार सोचकर मन्त्री से नहीं रहा गया। वह शिवा देवी के पैरों में गिर गया। उसने गिड़गिडाकर क्षमा मांगी। कहने लगा–'हे पतिव्रता सती! मैं स्वयं धर्म से भ्रष्ट होकर आपको भी धर्म से भ्रष्ट करना चाहता था, मगर आपने अपने धर्म की रक्षा की और मुझे भी बुरे रास्ते पर जाने से बचा लिया। आज से आप मेरी बहिन हैं। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।'

रानी ने कहा-भाई भूदेव! यह मनुष्य-जीवन बड़े पुण्य से मिला है। इसलिए मनुष्य को पाप से बचते रहना चाहिए और सदा धर्म का आचरण करना चाहिए। मैं पहले भी आपको भाई समझती थी और आज भी भाई समझती हूं।

एक बार उज्जयिनी नगरी में भयानक आग लगी। लोगों में हाहाकार मच गया। बहुत उपाय करने पर भी आग बुझी

नहीं। तब आकाश-वाणी हुई। आकाश में से किसी देवने कहा:
'कोई शीलवती स्त्री अपने हाथ से चारों दिशाओं में जल छिड़के तो आग अपने आप बुझ जायगी।'

यह आकाशवाणी सुन कर कई स्त्रियों ने पानी छिड़का फिर भी आग नहीं बुझी। तब शिवा देवी ने महल की छत पर चढ़कर चारों दिशाओं में पानी छिड़का और उसी समय आग एकदम शान्त हो गई।

इस घटना से शिवादेवी के शील की महिमा प्रगट हुई। सभी लोग सती शिवादेवी की प्रशंसा करने लगे। सचमुच शील की महिमा अपार है। जो शील का पालन करते हैं, देव भी उनका यश गाते हैं।

एक बार भगवान् महवीर स्वामी उज्जयिनी नगरी में पधारे। प्रभु की परम कल्याणकारीणी वाणी सुनकर शिवा देवी को वैराग्य हो गया। राजा चण्डप्रद्योतन से आज्ञा लेकर शिवा देवी ने दीक्षा अंगीकार कर ली। साध्वी होकर उन्होंने कठिन तप किया। कर्मों का क्षय किया और मुक्ति प्राप्त की।

शिवा देवी का चरित्र वहुत शिक्षाप्रद है। उससे एक बड़ी शिक्षा हमें यह मिलती है कि,पाप से घृणा करना चाहिए, किन्तु पापी से घृणा नहीं करना चाहिए। जो स्त्री या पुरुष पापी पर भी दया करके उसे पाप से छुड़ाते और सन्मार्ग पर लाते हैं, वे धन्य हैं!

०००

१०

कुन्ती

शौरपुर नामक नगर में अंधकवृष्णि राजा थे। उनकी पटरानी का नाम सुभद्रा था। इन्हीं सुभद्रा रानी के उदर से सती कुन्ती का जन्म हुआ। कुन्ती की एक छोटी बहिन थी। उसका नाम माद्री था। दोनों बहिनें बहुत सुशीला और सुंदर थीं।

जब दोनों बहिनें पढ़-लिख चुकीं और विवाह के योग्य हो गईं तो हस्तिनापुर के राजा पाण्डु के साथ दोनों का विवाह हो गया। दोनों बहिनें विदुषी थीं, धर्म पर दृढ़ रहने वाली थीं और पतिव्रता थीं। सौतिया-डाह उनमें लेश मात्र नहीं था। दोनों बहिने बड़े प्रेम के साथ रहती थीं। इस कारण उनका जीवन खूब सुखमय और शान्तिमय था।

कुछ समय बाद कुन्ती के उदर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम युधिष्ठिर रक्खा गया। फिर क्रम से दो पुत्र और हुए। उनमें से एक का नाम भीम और दूसरे का नाम अर्जुन हुआ।

रानी माद्री की कूख से नकुल और सहदेवनामक पुत्र उत्पन्न हुए। राजा पाण्डु के यहाँ पाँचों पुत्र पाण्डव कहलाये। पाँचों पाण्डवों ने खूब विद्या सीखी। शस्त्र-विद्या में वे कुशल हुए। शस्त्र-विद्या में तो कोई उनका मुकाबिला भी नहीं कर सकता था। पाण्डवों की वीरता की कहानी प्रसिद्ध है।

एक बार राजा पाण्डु सैर करने के लिए जंगल में गये। रानी कुन्ती और माद्री भी साथ थीं। अकस्मात् राजा के हृदय की गति बन्द हो गई और राजा की मृत्यु हो गई। यकायक इस घोर विपत्ति के आ पड़ने से दोनों रानियों को बेहद दुःख हुआ। राजा के स्वर्गवास का समाचार जब हस्तिनापुरनगर में पहुंचा, राज्यभर में शोक की लहर फैल गई। सब लोग राजा के सद्-गुणों को याद करके शोक मनाने लगे। मगर पाण्डवों के दुःख का तो पार ही नहीं रहा। उन्होंने अपने पिता का अन्तिम संस्कार किया। वे दोनों माताओं को राजमहल में ले आये और उनकी सेवा-भक्ति करते हुये समय व्यतीत करने लगे।

राजा पाण्डु के बड़े भाई का नाम धृतराष्ट्र था। धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे उनकी पत्नी का नाम गांधारी था। गांधारी के दुर्योधन आदि सौ पुत्र थे। यह सब कौरव कहलाते थे। इनमें दुर्योधन जो सबसे बड़ा था बहुत कपटी और चालबाज था। वह पाण्डव का राज्य हड़प कर खुद राजा बनना चाहता था। उसने राज्य पाने के लिये एक तरकीब की। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए राजी कर लिया। युधिष्ठिर ने अपने राज्य को दांव पर रख दिया। वे हार गये और राज्य कौरवों ने छीन लिया। पाण्डवों को वनवास करना पड़ा वन में सैकड़ों कष्टों को सहते हुए पाण्डव किसी प्रकार अपने दिन बिताने लगे।

पाण्डवों की इस दुर्दशा का प्रधान कारण जुआ था। जुआ बडी भारी बुराई है। जो जुआ के जाल में फंस जाता है, वह बहुत दुखी होता है। पाण्डव सरीखे राजा भी जुए के प्रताप से जंगल में मारे-मारे भटकते हैं, तो औरों का कहना ही क्या है? जुए की बदौलत बडे-बडे प्रतिष्ठित सेठ साहूकार थोडी ही देर में भिखारी बन जाते हैं, यह बात तो आज भी देखी जा सकती है।

श्रीकृष्णजी कुन्ती के भतीजे अर्थात् भाई के लडके थे। वे एक बार कुन्ती से मिलने आये। उन्होंने पूछा-भूआजी! आनंद-मंगल तो है? तब कुन्ती ने आंखों में आंसू भर कर कहा-बेटा! पति स्वर्ग सिधार गए और पुत्र जंगल में भटक रहे हैं। वहां न जाने कितने कष्ट उन्हें सहन करने पडते होंगे। जब पुत्र दुःखी हों तो माता कैसे सुखी रह सकती है?

कृष्णजी ने कुन्ती की बात सुनकर उन्हें तसल्ली दी। कहा-भूआजी, धीरज धरो। घबराने से दुःख मिटता तो है नहीं, ज्यादा बढ़ जाता है।

कुन्ती के पास से चल कर कृष्णजी कौरवों के पास पहुंचे। दुर्योधन वगैरह को उन्होंने बहुत समझाया। कृष्ण ने कहा-तुम राज्य भोगो, मगर पाण्डव भी तो तुम्हारे चचरे भाई हैं। पांच गांव उन्हें भी दे दो। वे उतने में ही सन्तोष कर लेंगे। आखिर राज्य तो उन्हीं का है।

कौरव अन्याय पर उतारू थे। श्रीकृष्ण के समझाने पर भी वे न माने। अन्त में कौरवों और पाण्डवों का महाभारत युद्ध हुआ। युद्ध में लाखों-करोडों आदमी और सारे के सारे कौरव मारे गये। पाण्डवों की जीत हुई। युधिष्ठिर फिर

हस्तिनापुर के राजा हुए । कुन्ती राजमाता हो गई ।

युद्ध में अपने समस्त पुत्रों के मारे जाने के कारण धृतराष्ट्र और गांधारी का हस्तिनापुर में मन नहीं लगा। वे वन में जाकर रहने लगे ।

कौरवों ने पाण्डवों को बहुत कष्ट पहुँचाया था । धृतराष्ट्र कौरवों के पिता थे । पाण्डव चाहते तो धृतराष्ट्र से भी करारा बदला ले सकते थे। मगर पाण्डव बहुत नम्र और विनीत थे । उन्होंने धृतराष्ट्र का अपने पिता के समान ही आदर किया। पर कुन्ती की उदारता का विचार करो । जब धृतराष्ट्र और गांधारी वन में रहने लगे तब कुन्ती उन्हें सान्त्वना देने के लिए स्वयं भी उन्हीं के साथ वन में रहने लगी। कितनी उदारता है ! कुन्ती की यह उदारता क्षमा और सहानुभूति इतिहास के पन्नों में स्वर्ण-अक्षरों में लिखी जाने योग्य है । धन्य हैं ऐसी क्षमाशील महिलाएँ ।

कुछ समय व्यतीत हो जाने के बाद कुन्ती ने दीक्षा लेने का विचार किया । उन्होंने अपने पुत्रों से दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी । मगर पाण्डवों ने मातृप्रेम के कारण आज्ञा देने से इन्कार कर दिया । तब कुन्ती ने उन्हें समझाते हुए कहा —पुत्रों! जिसने जन्म लिया है, उसे एक दिन मरना पडेगा । संसार में सदा के लिये कोई जीवित नहीं रहा है । और न रह सकता है। जिन्दगी का समय थोड़ा है इस थोडे से समय में ही मनुष्य को अपना कल्याण कर लेना चाहिए । कौन जानता है कि कल क्या होगा ? पहले तुम राजा थे, फिर कौरवों का राज्य हुआ, आज फिर तुम राजा हो गये और कौरवों का नाम निशान तक

नहीं रहा है ! अन्त में सब की यही दशा होगी। संसार के सुख क्षणिक हैं। क्षणिक होकर भी वे घोर दुःख के कारण हैं। इनसे सच्ची शान्ति नहीं मिलती। भोगों की ज्वाला में जलनेवाला कभी शान्ति नहीं पा सकता। सच्ची शान्ति का उपाय त्याग है। मैंने रानी बनकर पति का सुख देखा। तुम्हारे वन में चले जाने पर दुःख का अनुभव किया। तुम्हारे लौट आने पर हर्ष मनाया। तुम्हारे राजा बनने पर राजमाता होने का गौरव भोगा। संसार के सभी रंग मैंने देख लिये, मगर मुझे सच्ची शान्ति अभी तक नहीं मिली है। उसकी खोज के लिये मैं साधना करना चाहती हूं। तुम मेरे कल्याण-मार्ग में बाधा मत डालो।

आखिर कुन्ती की प्रबल इच्छा के सामने पाण्डवों को हार माननी पडी। कुन्ती को अनुमति मिल गई। उन्होंने साध्वी होकर कठोर तप किया। राजमाता का पद त्याग कर भिक्षुणी का पद अंगीकार किया। त्याग और संयम का जीवन बिताया। उनकी तपस्या सफल हुई। जिस शान्ति के लिये उन्होंने संसार त्यागा था, वह शाश्वत शान्ति उन्हें प्राप्त हो गई।

०००

११

दमयन्ती

कुण्डिनपुर के राजा भीम और रानी पुष्पावती की कन्या दमयन्ती का नाम कौन नहीं जानता? भारतवर्ष में जिन सतियों का नाम खूब प्रसिद्ध है, उनमें से दमयन्ती सती भी एक है। यहाँ उसी का चरित संक्षेप में बतलाना है।

प्राचीन काल में हमारे देश में स्वयंवर की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार कन्या स्वयं अपने लिए पति का चुनाव कर लेती थी।

दमयन्ती के पिता राजा भीम ने स्वयंवर-द्वारा उसका विवाह करने का निर्णय किया। देश-देश के राजाओं और राजकुमारों को निमन्त्रण भेजे गए। निश्चित तिथि पर सब कुण्डिनपुर में आए। वहाँ एक मण्डप बनाया गया। सब राजा उस मण्डप में बैठे। राजकुमारी दमयन्ती हाथ में माला लेकर मण्डप में आई। राजाओं का परिचय प्राप्त करती हुई वह आगे बढ़ने

लगी। बढ़ती-बढ़ती वह अयोध्या के राजकुमार नल के पास पहुंची। राजकुमार नल के सद्गुणों का परिचय पाकर उसे सन्तोष हुआ। उसने नल के गले में माला डाल दी। स्वयंवर समाप्त हो गया। अच्छे चुनाव के लिए सब लोग दमयन्ती की सराहना करने लगे। राजा भीम ने नल के साथ दमयन्ती का विवाह कर दिया। नल दमयन्ती को लेकर अयोध्या पहुँचें और सुखपूर्वक रहने लगे।

राजकुमार नल के पिता को संसार से वैराग्य हो गया। उन्हों ने नल को राजपाट सौंपकर दीक्षा ग्रहण की। अब नल राजा हो गया और दमयन्ती रानी हो गई।

राजा नल अपनी प्रजा से खूब प्रेम करता था। वह प्रजा के सुख को अपना सुख और प्रजा के दुख को अपना दुख समझता था। प्रजा भी उसे बहुत चाहती थी। इन गुणों के कारण राजा नल की कीर्ति चारों ओर फैल गई। राजा नल का एक छोटा भाई था—कुबेर? उसके मन में राज्य हथियाने का विचार आया। जुआ खेलने में वह बहुत चतुर था। उसका फेंका हुआ पासा कभी उलटा नहीं पड़ता था। नल को भी जुआ खेलने का शौक था। एक दिन कुबेर ने राज्य हड़पने के विचार से नल को जुआ खेलने का आग्रह किया। दांव पर राज्य रख दिया गया। नल जुए में हार गया। शर्त के अनुसार राज्य का मालिक कुबेर हो गया। हाय! इस जुए के कुव्यसनन से न मालूम कितने घर उजड़ गए। न जाने कितने धनी निर्धन होकर दर-दर के भिखारी बन गए। जुए की बदोलत राजा नल ने भी राज्य से हाथ धोया।

अब नल राजपाट छोड़कर जंगल में जाने को तैयार हुआ। दमयन्ती भी साथ जाने के लिए तैयार हो गई। नल ने उसे समझाया-दमयन्ती मेरा कहना मानो। तुम यहीं रहो। मेरे साथ मत चलो। जंगल में सैकड़ों कष्ट भोगने पड़ेंगे। कँटीले और कंकरीले रास्ते में पैदल चलना पड़ेगा। भूक-प्यास सहन करनी पड़ेगी। जंगली जानवर मिलेंगे तो उन्हें देखते ही डर जाओगी। तुम राजमहलों में पली हो। इन कष्टों को सहन नहीं कर सकोगी। अगर यहाँ न रहना चाहो तो अपने पिता के घर चली जाओ। मगर जंगल में भटकने का हठ मत करो!

दमयन्ती ने कहा-महाराज! आप क्या कह रहे हैं! जैसे शरीर की छाया शरीर को छोड़कर अलग नहीं रहती, उसी प्रकार में आपको छोड़कर अलग नहीं रह सकती। मैं सुख के समय आपके साथ रही हूँ तो दुःख के समय आपको अकेले कैसे छोड़ सकती हूँ? सच्ची पत्नी वही है जो दुःख के समय अपने पति के साथ रहे। जो पति के दुःख में भागीदार नहीं होती वह नीच स्त्री है। मैं ऐसी नीच नहीं हूँ। आपके साथ रह कर आपका कष्ट कम करूँगी। चाहे जंगल हो या राजमहल हो, जहाँ आप हैं वहाँ मुझे सुख है।

दमयन्ती की भावना कितनी ऊँची है? वह चाहती तो कह देती-तुमने जुआ खेल कर राज्य खोया है तो जंगलों में भटको! मैं तो यहीं महल में रहूँगी। मगर नहीं, ऊँचे कुल की कन्या ऐसी मतलबी नहीं होती। पतिव्रता स्त्री अपने पति को दुःख में तसल्ली देती है और दुःख मे हिस्सा बँटाती है।

दमयन्ती का आग्रह देखकर नल ने उसे साथ ले लिया।

दोनों चलते-चलते भयानक जंगल में पहुंचे। सांझ का समय हो गया था। दोनों थक गए थे। इसलिए रात बिताने के लिए वे एक वृक्ष के नीचे सो गए। दमयन्ती को नींद आ गई। नल को नींद नहीं आई। वह अपने भाग्य का विचार करने लगा। फिर उसे दमयन्ती का ख्याल आया। नल ने सोचा–प्रेम के कारण दमयन्ती मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहती। मगर जंगल में इसे बहुत कष्ट होगा। भयानक कष्टों को यह सह नहीं सकेगी। अच्छा हो, इसे सोती छोड़कर मैं चला जाऊँ।

नल ने दमयन्ती की साडी के छोर पर लिख दिया–'प्रिये! बाएँ हाथ की तरफ तुम्हारे पीहर का रास्ता है। तुम वहीं चली जाना। मुझे मत खोजना। फिर कभी मिलेंगे!

राजा नल कठोर दिल करके रवाना हुआ। जंगलों को पार करता हुआ वह जा रहा था। रास्ते में नल का पिता, जो देव हो गया था, उसे मिला। उसने नल को कुबड़ा कर दिया, जिससे उसे कोई पहचान कर कष्ट न दे। साथ ही देव ने रूप बदलने की विद्या भी सिखला दी। अब नल अपनी इच्छानुसार अपना रूप पलट सकता था। नल कुबड़ा होकर चलते-चलते सुंसुमार नगर में पहुँचा। वहां एक मदोन्मत हाथी को वश में करने के कारण राजा के साथ उसका मिलन हो गया। उसने सच्चा परिचय न देकर कहा–मैंने राजा नल से सूर्यपाक रसोई बनाना सीखा है। आप चाहें तो मुझे अपना रसोइया बना लीजिए। बेचारे राजा को क्या पता था कि यही राजा नल है! उसने उसे रसोइया बना लिया। नल रसोइया बन कर सुंसुमार नगर के राजा के पास रहने लगा।

रात्रि के पिछले पहर में दमयन्ती की नींद खुली। उसने इधर-उधर नजर डाली मगर नल कहीं दिखाई नहीं दिया। तब वह उठी और नल को आसपास में खोजने लगी। मगर नल हों तो दिखाई दें। दमयन्ती के चित्त में घोर चिन्ता होने लगी। उसे अपनी कम और पति की अधिक चिन्ता हुई। सोचने लगी-इस घोर जंगल में मेरे पति कहाँ चले गए ? कोई जंगली जानवर तो नहीं उठा ले गया, आह ! यह कैसी दुर्दशा हुई ?

इतने में दमयन्ती की दृष्टि साडी के कोने पर पड़ गई। अपने पति के लिखे अक्षर देखकर उसकी चिन्ता कुछ कम हो गई, मगर पति के वियोग का दुःख उसे असह्य लगने लगा। लाचार होकर वह पति के बतलाए हुए मार्ग पर चलने लगी। चलते-चलते उसे धनदेवनामक एक सार्थपति मिला। वह अचलपुर जा रहा था। दमयन्ती उसके साथ हो गई और अचलपुर पहुँच गई।

अचलपुर के राजा का नाम ऋतुपर्ण था। चन्द्रयशा उसकी रानी थी। रानी को मालूम हुवा कि नगर के बाहर एक सार्थ ठहरा है। उसमें एक कन्या बहुत चतुर और सुन्दर है। रानी ने नोकर भेजकर उसे बुलवाया और दानशाला में रख लिया।

चन्द्रयशा, दमयन्ती की मोसी थी, मगर वह दमयन्ती को पहचान नहीं सकी। दमयन्ती अपनी मौसी को पहचानती थी लेकिन उसने अपना परिचय देना ठीक न समझा। वह दानशाला में काम करने लगी और भगवान के भजन में अपना समय बिताने लगी।

कुछ दिन बीत जाने के बाद दमयन्ती के पीहर कुण्डिनपुर से एक ब्राह्मण अचलपुर आया। उसने दमयन्ती को पहचान लिया और रानी चन्द्रयशा से कह दिया। वह नल और दमयन्ती की खोज में ही निकला था। चन्द्रयशा को जब यह समाचार मिला तो वह फौरन दमयन्ती के पास आई। रानी ने कहा—बेटी! तू ने पहले अपना नाम क्यों नहीं बतला दिया? वृथा इतने दिनों तक कष्ट सहन किया! मैंने तुझे नहीं पहचाना था, इसी कारण दासी का काम करवाया। मुझे क्षमा करना। चल, राजमहल में चल और सुखसे रह।

दमयन्ती ने कहा—मोसी! मेरे पति न जाने कहाँ होंगे और क्या करते होंगे? वे कहीं कष्ट सहें और मैं राजमहल में रहूँ, यह बात मुझे पसंद नहीं थी। इसी कारण दासी बनकर रहना मुझे अच्छा लगा।

दमयन्ती थोडे दिन रह कर अपने पिता के पास चली गई। वहाँ उसे सब प्रकार के सुख प्राप्त थे, लेकिन पति के वियोग के कारण उसके चित्त में शान्ति नहीं थी। वह यही सोचा करती थी कि मेरे पति पर न मालूम कैसी बीत रही होगी।

दमयन्ती के पिता राजा भीम ने नल को खोजने के लिए चारों दिशाओं में आदमी भेज रक्खे थे। उन्हीं दिनों सुंसुमार नगर से एक व्यापारी कुण्डिनपुर आया। उसने बातचीत के सिलसिले में बतलाया—राजा नल का एक रसोइया हमारे राजा के यहाँ रहता है। वह सूर्यपाक रसोई बनाना जानता है। वह हाथी को वश में कर लेता है। कुबड़ा है मगर बहुत ही गुणवान है। व्यापारी की यह बात दमयन्ती ने भी सुनी और उसे विश्वास

हो गया कि वही राजा नल हैं।

दमयन्ती के पिता को भी विश्वास हो गया। मगर वे एक परीक्षा और करना चाहते थे। उन्होंने कहा–राजा नल अश्व-विद्या में निपुण हैं। यह परीक्षा और कर लेनी चाहिये। फिर सन्देह नहीं रहेगा।

आखिर भीम ने एक तरकीब सोची–सुंसुमार नगर के राजा के पास दूत के साथ दमयन्ती के स्वयंवर का आमन्त्रण भेजा जाय। दूत स्वयंवर की तिथि से सिर्फ एक दिन पहले वहाँ पहुँचे। अगर वह कुबड़ा राजा नल होगा तो अश्वविद्या द्वारा सुंसुमार नगर के राजा को एक ही दिन में यहाँ पहुँचा देगा। इससे नल की अवश्य परीक्षा हो जायगी।

ऐसा ही किया गया। राजा भीम का दूत सुंसुमार नगर के राजा के पास पहुँचा। राजा निमन्त्रण पाकर स्वयंवर में जाना चाहता था, मगर एक ही दिन में पहुँचना संभव न समझ-कर उदास हो रहा था। नल दमयन्ती के स्वयंवर की खबर से चकित था और वह भी स्वयंवर के समय पहुँचना चाहता था। अन्त में नल ने राजा से कहा–महाराज ! बढ़िया घोड़ों का रथ मंगवाइए। मैं आज ही आपको कुण्डिनपुर पहुँचा दूंगा।

राजा ने रथ मँगवाया। नल अश्वविद्या में निपुण थे ही। उसी दिन वह कुण्डिनपुर पहुँच गये। इस घटना से राजा ने और दमयन्ती आदि ने समझ लिया कि कुबडे के भेष में यही राजा नल है।

आखिर नल प्रगट हुए। उन्होंने रूप पलटने वाली विद्या से अपना असली रूप धारण कर लिया। सुंसुमार नगर के राजा

यह जानकर कुछ लज्जित हुए कि मैंने अनजान में राजा नल को अपना रसोइया बनाया । सब जगह आनन्द छा गया । दमयन्ती अपने पति को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । नल के छोटे भाई कुबेर ने आ कर नल की क्षमा मांगी और राज्य लौटा दिया । नल फिर राजा हुए । दमयन्ती फिर रानी बनी । दोनों सुख के साथ समय व्यतीत करने लगे ।

कुछ दिनों बाद महारानी दमयन्ती की कूख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम पुष्कर रक्खा गया । राजकुमार पुष्कर जब जवान हो गया तो उसे राज्य सौंपकर राजा नल और दमयन्ती ने दीक्षा अंगीकार कर ली । दोनों ने संयम का आराधन किया । तपस्या की । अन्त में उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई ।

ooo

/ १२

पुष्पचूला

गंगा नदी के तट पर पुष्पभद्र नामक नगर था। वहाँ के राजा का नाम पुष्पकेतु था। पुष्पकेतु की रानी का नाम पुष्पवती था। पुष्पवती के उदर से एक बालक और एक बालिका का जन्म हुआ। बालक का नाम पुष्पचूल और बालिका का नाम पुष्पचूला रक्खा गया।

भाई-बहिन में गाढा प्रेम था। दोनों ने बाल्यावस्था में खूब परिश्रम करके विद्या पढी। पुष्पचूला जब अच्छी तरह पढ़-लिखकर तैयार हो गई और विवाह के योग्य हुई तो उसका विवाह हो गया।

पुष्पचूला में जन्म से ही धर्म के संस्कार थे। उसे धर्म के प्रति गहरा प्रेम था। संसार के भोग-विलास और राग-रंग उसे पसंद नहीं थे। उसने समझ लिया था कि मनुष्य का जीवन बहुत उत्तम है और सदैव स्थिर रहने वाला नहीं है। पुण्य की पूंजी

खर्च करने पर यह जन्म मिलता है। अतः मनुष्य-जन्म पाकर पाप करना उचित नहीं है। पुण्य की पूंजी बढाना चाहिए। ऐसा समझ कर पुष्पवती धर्म की आराधना में लगी रहती थी। वह न किसीको कठोर और कटु वचन कहती थीं, न किसी के चित्त को दुखाती थी। सब से मीठा और सत्य बोलती थी। दुखिया को देखकर उसके दिल में दया उपजती थी। सब के साथ प्रेम और विनय का व्यवहार करती थी।

इतना सब करने पर भी उसके चित्त को संतोष नहीं था। वह दुनियादारी के सब झगडों से अलग होकर शान्ति के साथ एकान्त धर्म की आराधना करना चाहती थी। उसे पूर्ण शान्ति प्राप्त करनी थी। गृहस्थी को छोडे बिना पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव विवाह के कुछ ही दिनों बाद पुष्पचूला ने अपने पति से दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। ऐसी सदाचारिणी, धर्मनिष्ठ पत्नी को छोड़ना भला किसको अच्छा लगता है? पुष्पचूला के पति नें उसे बहुत समझाया और महल में रहकर ही मनचाहा धर्म करने की सलाह दी। मगर पुष्पचूला का मन संसार से फिर गया था। उसने पति से कहा-संसार के भोग तुच्छ हैं। इनसे पाप की वृद्धि होती है। इस लिए इनको त्याग देने में ही कल्याण है। फिर इस जीवन का क्या ठिकाना है? आज है, कल नहीं। ऐसी अवस्था में धर्म कार्य करने में विलंब नहीं करना चाहिए। आप कृपाकर मुझे संयम लेने की आज्ञा दे दीजिए।

पुष्पचूला का पति भी विवेकवान् था। उसने कहा—मैं तुम्हें जबरदस्ती नहीं रोकना चाहता। धर्म करने में तुम पूरी

तरह स्वतन्त्र हो। जैसी इच्छा हो करो। मेरी तरफ से कोई बाधा मत समझो।

पति की आज्ञा मिल जाने पर पुष्पचूला ने भर जवानी में संयम धारण किया। वह राजसी सुखों को छोड़कर साध्वी बनी। साध्वी बनकर महासती पुष्पचूला ने खूब तप किया, खूब धर्मध्यान किया और शास्त्रों का खूब ज्ञान प्राप्त किया। दूसरी साध्वियों की सेवा करने में वह बहुत रुचि रखने लगी। इस प्रकार संयम का आचरण करने से उनके घाति कर्म नष्ट हो गए। उन्हें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ।

कुछ दिनों तक संसार के प्राणियों को धर्म का उपदेश देकर और धर्म के मार्ग पर लगाकर महासतीजी ने अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

धन्य है सती पुष्पचूला, जिन्होंने संसार के सुखों को ठुकरा कर वैराग्य धारण किया।

० ० ०

१३

प्रभावती

विशाला नगरी के महाराज चेटक की सात पुत्रियाँ थीं। राजा चेटक स्वयं धर्मनिष्ठ, नीतिपरायण और गुणवान थे। इस कारण उनकी सब पुत्रियाँ भी गुणवती, शीलवती और धर्म में रुचि रखने वाली थीं। इन पुत्रियों में से मृगावती, शिवा प्रभावती और पद्मावती सोलह सतियों में गिनी गई हैं। शेष तीन में से एक त्रिशला भगवान महावीर स्वामी की माता थीं। दूसरी चेलना राजा श्रेणिक की रानी थीं। उसने अपने उपदेश से श्रेणिक राजा को जैनधर्म का उपासक बनाया था। तीसरी का नाम सुज्येष्ठा था। सुज्येष्ठा ने अपना विवाह नहीं किया। वह बालब्रह्मचारिणी साध्वी हुई। इस प्रकार महाराज चेटक की सातों पुत्रियाँ ऐसी हुई हैं, जिनका नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है। सच है, अच्छे माता-पिता की सन्तान भी अच्छी होती है। जो अपनी सन्तान को धार्मिक और गुणवान बनाना

चाहता है उसे स्वयं धर्मनिष्ठ और गुणवान बनना चाहिए।

प्रभावती का विवाह सिन्धुसौवीर देश के राजा उदयन के साथ हुआ। उनकी राजधानी वीतभय नगर में थी। प्रभावती में जन्म काल से ही धर्म के संस्कार मौजूद थे। उदयन भी धर्म-प्रेमी राजा था। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए दोनों-राजा और रानी-सुख के साथ समय बिता रहे थे।

एक बार महाप्रभु महावीर वीतभय नगरी में पधारे। राजा और रानी को भगवान के पधारने का समाचार पाकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। दोनों प्रभु के दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये गए। भगवान ने उन्हें उपदेश दिया। उपदेश सुनकर रानी प्रभावती ने दीक्षा लेने का विचार किया और राजा से आज्ञा मांगी। राजा स्वयं धर्मप्रेमी था। अतः उसने आज्ञा देने से इन्कार नहीं किया। मगर आज्ञा देने से पहले उसने एक शर्त रक्खी। उसने कहा—अगर मैं जीवित रहूँ और तुम स्वर्ग चली जाओ तो मुझे प्रतिबोध देने के लिए आना।

प्रभावती ने राजा की यह शर्त मान ली और दीक्षा धारण कर ली। साध्वी प्रभावती ने डटकर संयम का पालन किया और कठोर तप किया। आयु पूरी होने पर वह पहले स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

अपने दिए हुए वचन के अनुसार उसने स्वर्ग से आकर राजा उदयन को प्रतिबोध दिया। प्रतिबोध पाकर राजा को भी संसार से वैराग्य हो गया और मुनिदीक्षा अंगीकार करके तपस्वी बन गया।

सती प्रभावती की कथा से मालूम होता है कि पति और पत्नी का संबंध संसार के विषय-भोग भोगने के लिए ही नहीं हैं। पत्नी अपने पति के धर्म में सहायक हो और पति अपनी पत्नी के धर्म में सहायता करे। दोनों एक दूसरे के धर्मपालन में सहायक बनें तभी वह सच्चा पति है और तभी वह सच्ची पत्नी है। शास्त्र में पत्नी को 'धर्मसहायिका' कहा है। पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह अपने पति को धर्म के मार्ग पर लगावे। ऐसा करने से दोनों का सुख बढ़ता है। प्रभावती ने अपने पूर्व जन्म के पति को प्रतिबोध देकर संयमधर्म में लगाया। बहिन! इस शिक्षा को मत भूलना। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा।

०००

१४

पद्मावती

सती पद्मावती भी वैशाली के प्रसिद्ध राजा चेटक की पुत्री थी। चम्पा के राजा दधिवाहन के साथ उनका विवाह हुवा। राजा दधिवाहन और रानी पद्मावती दोनों न्यायनिष्ठ और धर्मात्मा थे।

एक बार रानी की इच्छा को पूर्ण करने के लिये राजा दधिवाहन रानी के साथ हाथी पर सवार होकर वन-क्रीडा करने निकले। वसन्त ऋतु थी। तरह-तरह के फूलों से बढ़िया सुगन्ध आ रही थी। इस कारण हाथी को मद चढ़ गया। उसने महावत को नीचे गिरा दिया और भाग खड़ा हुआ। राजा और रानी हाथी की पीठ पर ही बैठे रह गये। हाथी भागता जाता था। उसके रुकने का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता था।

राजा और रानी को अपने प्राण बचाने की चिन्ता हुई। उसी समय सामने एक बड़ा पेड़ दिखाई दिया। राजा ने रानी

से कहा—देखो, हाथी बड़ की ओर भाग रहा है। यह जब बड़ के नीचे होकर निकले तो तुम बड़ की एक डाल पकड़ लेना। मैं भी पकड़ लूंगा। ऐसा करने से हम लोग मुसीबत से बच सकेंगे।

हाथी बड़ के नीचे होकर निकला और राजाने उचक कर फुर्ती से बड़ की डाल पकड़ ली और उसी के सहारे लटक गया। मगर रानी गर्भवती होने के कारण डाल नहीं पकड़ सकी और वह हाथी की पीठ पर ही रह गई। साथ के लोग पहले ही बिछुड़ गये थे। राजा-रानी ही साथ थे। अब राजा भी बिछुड़ गया रानी अकेली हाथी पर रह गई। हाथी और तेजी से भागा! राजा उसका पीछा नहीं कर सका।

दौड़ता-दौड़ता हाथी घने बन में जा पहुँचा। प्यासा हो जाने के कारण वह एक जलाशय में घुसा। उस समय हाथी का हौदा एक पेड़ की डाल से लग गया! रानी उस डाल को पकड़ कर हाथी से उतर गई। हाथी पानी पीकर भाग गया। रानी अकेली असहाय अवस्था में वहीं बैठ गई।

कोई और स्त्री होती तो डर की मारी प्राण छोड़ देती। मगर रानी पद्मावती धीरज वाली स्त्री थी। उसनें सोचा—अबतक धीरज रखने से ही में जीवित रह सकती हूँ तो अब धीरज छोड़ना ठीक नहीं है। विपदा आने पर ही धीरज की आवश्यकता है। धीरज रखने से विपदा टल जाती है। विपदा के समय धीरज छोड़ देने से विपदा चौगुनी मालूम होती है। इसलिए विपदा को जीतने का उपाय धीरज और साहस रखना ही है। ऐसा सोचकर रानी ने बिना घबराहट के नगर का रास्ता खोजना

शुरू किया। खोजते-खोजते वह एक नगर में आ पहुँची।

नगर में पहुंच कर पद्मावती साध्वियों के उपाश्रय में पहुँची और उसने साध्वी-दीक्षा ले ली। साध्वी होकर पद्मावती धर्मध्यान में लीन रहने लगी। कुछ दिनों बाद साध्वियों को उसके गर्भ का पता लगा। तब उन्होंने पद्मावती से कहा—तुमने बहुत अनुचित कार्य किया है। गर्भ की बात छिपानी नहीं चाहिए थी। गर्भिणी स्त्री को दीक्षा लेना और देना शास्त्र में मना किया है। पर अब क्या हो सकता था! आखिर साध्वियों ने पद्मावती को गुप्त रूप से रख दिया, जिससे धर्म की बदनामी न हो और गर्भ की भी रक्षा हो जाय।

समय पूरा होने पर बालक का जन्म हुआ। पद्मावती रात्री के समय उसे श्मशान में ले गई और ऐसे जगह रख दिया जहाँ आने-जाने वाला जल्दी ही बालक को देख ले। बालक की रक्षा के लिए वह स्वयं पास की एक झाडी में छिपकर बैठ गई।

थोडी देर बाद वहां एक चाण्डाल आया। वह सुन्दर बालक को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने घर ले जाकर अपनी पत्नी को बालक सौंप दिया। चाण्डाल सन्तान-हीन था। चांडाल की पत्नी उस बालक को पाकर बहुत खुश हुई। पद्मावती चाण्डाल के पीछे-पीछे घर तक आई। सब हाल देखकर उसे सन्तोष हो गया कि अब बालक का पालन-पोषण हो जायगा। यह सोचकर पद्मावती लौट गई और साध्वियों के साथ रहकर धर्मध्यान तथा तप करने लगी।

पद्मावती के उस बालक का नाम करकण्डू रक्खा गया। करकण्डू बड़ा हो गया। एक बार श्मशान में पहरा दे रहा था।

उस समय दो साधु उधर होकर निकले। उनमें से एक के मुंह से निकला—वांस की इस झाडी में सात गांठवाली एक लकडी है। यह लकडी जिसे मिलेगी उसे राज्य मिलेगा।

साधु का यह कथन करकण्डू ने भी सुना और एक रास्ते चलते ब्राह्मण ने भी सुना। दोनों लकडी लेने दौडे और दोनों ने उसे एक साथ हाथ लगाया। दोनों उसके लिए झगडा करने लगे। आखिर मामला राजा के पास पहुँचा। राजा को चाण्डाल के लड़के की चतुराई और तेजस्विता देखकर अचरज हुआ। राजा ने फैसला किया—करकण्डू! श्मशान में पैदा होने के कारण यह लकडी तुम्हारी है। लकडी के प्रताप से जब तुम्हें राज्य मिल जाय तो एक गांव इस ब्राह्मण को भी दे देना।

फैसला करने वाले राजा दधिवाहन थे। करकण्डू उन्हीं का पुत्र था। मगर यह बात किसी को मालूम नहीं थी। करकण्डू को सब लोग चाण्डाल का ही लड़का समझते थे।

एक बार करकण्डू उस लकडी को लेकर कंचनपुर की ओर जा रहा था। उसी समय राजा का देहान्त हो गया। राजा निस्सन्तान था। मन्त्रियों ने निश्चय किया— कि श्रेष्ठ हथिनी की सूंड में हार डाल कर उसे छोड़ दिया जाय। हथिनी जिसके गले में हार डाले उसी को राजा बना दिया जाय। ऐसा ही किया गया। हथिनी ने करकण्डू के गले में हार डाल दिया और करकण्डू कंचनपुर का राजा बन गया।

यह सब पुण्य का खेल है। जिसने पुण्य किया है, उसी को संसार में सुख की प्राप्ति होती है।

जब उस ब्राह्मण को पता चला कि करकण्डू राजा हो गया है तो वह एक गाँव माँगने आया। राजा करकण्डू ने उसे पूछा–तुम किसके राज्य में रहते हो ?

ब्राह्मण बोला–राजा दधिवाहन के राज्य में।

करकण्डू ने राजा दधिवाहन को आज्ञा-पत्र लिख दिया कि इस ब्राह्मण को एक गांव जागिरी में दे दो।

आज्ञापत्र लेकर ब्राह्मण राजा दधिवाहन के पास पहुँचा। पत्र पढ़कर राजा को क्रोध आया। उसने सोचा–करकण्डू मेरे ऊपर हुक्म चलानेवाला होता कौन है ! फिर राजा ने ब्राह्मण से कहा–जाओ, करकण्डू से कह दो कि राजा दधिवाहन तुम्हारा राज्य छीन कर ब्राह्मण को गांव देंगे।

इसके बाद राजा दधिवाहन ने अपनी फौज तैयार करके करकण्डू के राज्य पर चढ़ाई कर दी। करकण्डू भी अपनी फौज सजा कर सामना करने के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार बाप और बेटा एक दूसरे के शत्रु बन गये।

उस समय संयोग से पद्मावती साध्वी वहीं मौजूद थीं। उन्होंने सोचा–मामूली-सी बात के लिए बाप-बेटा का यह युद्ध हो रहा है। युद्ध में सैकडों-हजारों आदमी मारे जाएंगे। यह बहुत बुरी बात है, किसी तरह इस युद्ध को रोक देना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर पद्मावती करकण्डू के पास पहुँची। उसने पिछला सब वृत्तान्त कहा। करकण्डू को यह जानकर बहुत आश्चर्य और आनन्द हुआ कि राजा दधिवाहन उसके पिता हैं। इसके बाद पद्मावती राजा दधिवाहन के पास भी

पहुंची। दधिवाहन को भी सब हाल मालूम हुआ तो उसे भी बहुत प्रसन्नता हुई।

राजा दधिवाहन, करकण्डू से और करकण्डू दधिवाहन से मिलने चले। करकण्डू अपने पिता के पैरों में गिर पड़ा। दधिवाहन ने उसे छाती से लगा लिया।

साध्वी पद्मावती के प्रयत्न से घोर हिंसा टल गई। उसके बाद पद्मावती ने वहां से विहार कर दिया और देश-देश में भ्रमण कर धर्म का उपदेश दिया और अपना कल्याण किया।

000

१५

सीता

भरतक्षेत्र में मिथिला नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम जनक था। जनक का दूसरा नाम विदेह भी था। सीताजी इन्हीं राजा जनक की पुत्री थीं। इसी कारण उन्हें जानकी भी कहते हैं और वैदेही भी कहते हैं।

एक बार एक म्लेच्छ राजा अपनी बड़ी भारी फौज लेकर मिथिला पर चढ़ आया। म्लेच्छ राजा के सैनिक मिथिला में उपद्रव मचाने लगे। राजा विदेह की सेना उनका सामना करने में असमर्थ थी। अतएव विदेह ने अपने मित्र और अयोध्या के राजा दशरथ के पास सहायता के लिए एक दूत भेजा। दूत से सब समाचार जान कर दशरथ सेना के साथ मिथिला जाने को तैयार होने लगे।

राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को पता चला तो वे दोनों राजा के पास आये। उन्होंने कहा—'पिताजी! आप वृद्ध हैं और आपकी दया से हम समर्थ हो गए हैं। अब हमें

मिथिला जाने की आज्ञा दीजिए। हम शत्रु को भगाकर आपकी कीर्ति बढ़ाएंगे।

अपने पुत्रों का उत्साह और आग्रह देखकर राजा दशरथ को सन्तोष हुआ। राम-लक्ष्मण को मिथिला जाने की आज्ञा मिल गई। वहाँ पहुँच कर दोनों भाइयों ने खूब वीरता दिखलाई। म्लेच्छ राजा की सेना भाग गई। मिथिला की प्रजा का उपद्रव टल गया। राजा जनक को राम-लक्ष्मण की वीरता देखकर प्रसन्नता हुई। दोनों का सत्कार-सन्मान करके उन्होंने अयोध्या भेज दिया।

कुछ दिनों वाद राजा जनक की पुत्री सीता का स्वयंवर हुआ। स्वयंवर में वज्रावर्त नामक धनुष रक्खा गया। जो उस धनुष पर वाण चढ़ा देगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा, यह शर्त रक्खी गई। वहुत से राजा और राजकुमार स्वयंवर में आये, मगर किसी से बाण नहीं चढ़ा। तब रामचन्द्र उठे और उन्होंने वाण चढ़ा दिया। सीता प्रसन्न होकर उनके गले में वरमाला डाल दी।

राजा जनक और दशरथ आपस में मित्र थे ही, अव वह मित्रता और वढ़ गई। राम का और सीता का विवाह हो गया। सीता अयोध्या में आ गई और सुख एवं शान्ति के साथ समय वीतने लगा।

कुछ दिनों के वाद अयोध्या में एक मुनिराज पधारे। वे बडे ज्ञानी थे। भूतकाल की बात भी जानते थे और भविष्य की बात भी जानते थे। राजा दशरथ ने उनसे अपने पूर्वभव की बात पूछी! मुनिराज का उत्तर सुनकर दशरथ को वैराग्य हो गया। राज्य अपने वडे पुत्र रामचन्द्र को देकर उन्होंने साधु बनने

की इच्छा प्रकट की। रामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। इसी समय रामचन्द्र की सौतेली माता कैकेयी ने राजा दशरथ के द्वारा दिया हुआ वर मांग लिया। उसने भरत के लिए राज्य मांगा। इस वर-याचना से दशरथ को बहुत दुःख हुआ, क्योंकि सबसे बडे पुत्र होने के कारण रामचन्द्र ही राज्य के अधिकारी थे। मगर रामचन्द्र का हृदय बहुत उदार था और वे भरत से बहुत प्रेम करते थे। इस कारण उन्होंने दशरथ को भली भांति सान्त्वना दी और भरत को राज्य देने का अनुमोदन किया। रामचन्द्र वनवास के लिये रवाना होने लगे।

सीता को यह समाचार मिला तो वह भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो गई। कोई सामान्य स्त्री होती तो वह बवंडर खड़ा कर देती, मगर सीता कुलीन कन्या थी। उसने कुटुम्ब में कलह उत्पन्न करने का विचार तक नहीं किया। सीता ने कीमती आभूषण उतार दिये, उत्तम वस्त्र भी हटा दिये। साधारण वनवासियों के योग्य पोशाक पहन ली। जो सीता रानी बनने वाली थी, वह वनवासिनी बनने के लिए तैयार हो गई। फिर भी कैकेयी या भरत के प्रति उसके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं आया। धन्य है ऐसी आदर्श नारी!

सीता कौशल्या के पास वन जाने की आज्ञा लेने पहुँची। कौशल्या देवी ने सीता से कहा–'बहू! राम तो पिता की प्रतिज्ञा पालने के लिए वन जा रहा है। वह वीर पुरुष है। मगर तू कोमल शरीरवाली राजकुमारी है। सदा महलों में रही है। तू वन के कष्ट नहीं झेल सकेगी। वन के रास्ते कँकरीले, पथरीले और कांटों से परिपूर्ण होते हैं। तू पैदल कैसे चलेगी? सर्दी और गर्मी तुझ से नहीं सही जायगी। जंगल में शेर, बाघ, भालू, सांप

आदि भयानक जीव जन्तु फिरते रहते हैं। उन्हें देखते ही तेरे प्राण सुख जाएँगे। इसलिये बेटी, मेरा कहना मान। राम को वन जाने दे। तू यहीं मेरे पास रह। इतना कह कर कौशल्या ने सीता को अपनी छाती से लगा लिया।

सीता बडे संकट में पड़ गई। अपनी बूढी सास को अकेली छोड़ जाना उसे अच्छा नहीं लगता था और अकेले पति को वन जाने देना भी उसे उचित नहीं प्रतीत होता था। लेकिन सीता ने सोचा–माताजी को यहाँ अयोध्या के राजमहलों में कोई कष्ट नहीं होगा, पर वे (रामचन्द्रजी) अकेले वन में जा रहे हैं। वहाँ उनकी सार–संभाल करनेवाला कोई नहीं है। अतः मुझे भी वन ही जाना चाहिए। इस प्रकार मन में निश्चय करके सीता ने कहा—'माताजी! आप मेरी सुकुमारता का विचार न करें। मैं फूल-सी कोमल हूँ तो पत्थर की तरह कठोर भी हूँ। सब संकट सह लूंगी। पति के सुख-दुःख में साथ देना पत्नी का कर्त्तव्य है। पति वन में भटकते रहें और पत्नी आराम से राज-महल में पडी रहे, यह अनुचित है। मैंने उनके साथ सुख भोगा है तो दुःख भी भोगना चाहिए। संकट के समय जो स्त्री अपने पति का साथ न दे, वह नीच है, कर्त्तव्यविमुख है, अकुलीन है और कृतघ्न है। मैं ऐसी नहीं बनूंगी। मैंने साथ जाने का पक्का विचार कर लिया है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं स्वयं कष्ट झेल कर भी उनकी सेवा कर सकूं।'

सीता के दृढ़ संकल्प के सामने महारानी कौशल्या को हार माननी पडी। रामचन्द्र ने भी सीता को बहुत समझाया कि तुम वन के कष्ट न सह सकोगी, पर सीता नहीं मानी। तब सीता को साथ लेकर राम वनबास के लिये रवाना हुए। लक्ष्मण भी

साथ हो गए। उन्होंने अपने बड़े भाई को अकेला छोड़ना उचित न समझा। इस तरह तीनों जने राजसी सुख छोड़कर वनवासी बन गये।

राम, लक्ष्मण और सीता वन में झोंपड़ी बनाकर निवास कर रहे थे। सीता बहुत सुन्दरी थी। उनकी सुन्दरता का हाल लंका के राजा रावण ने भी सुना। रावण के मन में सीता को प्राप्त करने का विचार आया। उसने संन्यासी का वेष बनाया और सीता की झोंपडी के पास आया। जब राम और लक्ष्मण बाहर चले गए तो रावण झोंपडी के द्वार पर आया और सीता से भिक्षा मांगी। कुलीन नर-नारी अपने द्वार पर आए हुए अतिथि-अभ्यागत को कभी खाली हाथ नहीं लौटाते। अतः सीता जब भिक्षा देने के लिये झोंपडी से बाहर निकली तो रावण ने उसे पकड़ लिया। रावण के पास पुष्पक नामक वायुयान था। उसने सीता को जबर्दस्ती उस विमान में बिठा लिया और लंका लेगया।

रावण ने लंका पहुँच कर सीता को अशोक वाटिका में रक्खा। उसने अनेक प्रकार के लोभ दिखाए और अपने जाल में फँसाने की चेष्टा की। वह कहने लगा—देवी! प्रसन्न होकर मुझे स्वीकार करो। मैं तुम्हारा दास बनकर रहूँगा। मैं तुम्हें अपनी पटरानी बनाऊँगा, किसी स्त्री पर बलात्कार करके उसका शील भंग करने का मैंने त्याग कर रक्खा है। अत: तुम अपनी ही इच्छा से मुझे स्वीकार कर लो। तुम्हें संसार के सभी सुख प्राप्त हो जाएंगे।

सीता पक्की शीलवती सती थी। उसने रावण की बातों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। संसार का कोई भी प्रलोभन उसे शील धर्म से नहीं गिरा सकता था। सीता मन ही मन राम

को याद कर रही थी। रावण ने सैकड़ों तरह से सीता को फुसलाया, मगर सती सीता अपने पतिव्रत-धर्मसे तनिक भी नहीं डिगी।

रावण ने सोचा—सीता मनाने से नहीं मानती। लोभ से मेरे वश में नहीं आती। अब इसे डर दिखाना चाहिए। स्त्रियाँ स्वभाव से डरपोक होती हैं। डर दिखाने से यह मान जायगी और मुझे स्वीकार कर लेगी। यह सोचकर उसने कहा—सीता! मेरा कहना मान लो। अगर तुम मुझे पति मान लोगी तो रानी बनकर मौज करोगी। अगर तुम अपने हठ पर अड़ी रहोगी तो तुम्हारी बुरी दशा होगी। यहां कोई तुम्हारी रक्षा करनेवाला नहीं है। मैं तुम्हें असह्य कष्ट दूंगा और फिर इस तलवार से तुम्हारा गला काट डालूंगा। बोलो, तुम क्या चाहती हो?

सीता ने कहा—रावण! तू किसे डर दिखा रहा है? सीता डरने वाली नहीं है। पतिव्रतधर्म मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है। धर्म की रक्षा के लिये मैं खुशी के साथ प्राण निछावर कर सकती हूं। तू कहता है कि यहां मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, मगर अपने धर्म की रक्षा करने वाली मैं खुद हूं। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक मैं अपने धर्म की रक्षा करूंगी। धर्म की रक्षा के लिए शरीर का नाश हो तो भले हो, मगर शरीर की रक्षा के लिए। धर्म का नाश नहीं होने दूंगी। रावण! मैं कहती हूं-तुम पापभाव छोड़ो। संसार की कोई भी ताकत मुझे धर्म से भ्रष्ट नहीं कर सकती। तुम वृथा अपजस के भागी मत बनो।

जब राम और लक्ष्मण लौटकर अपनी झोंपड़ी में आये तो सीता नहीं दिखाई दी। दोनों को बहुत चिन्ता हुई। दोनों भाई सीता की खोज में घूमने लगे। घूमते-घूमते सुग्रीव राजा से

उनको भेंट हो गई। सुग्रीव राजा ने भी उनकी सहायता की। बहुत खोज करने के बाद हनुमान द्वारा पता चला कि सीता को रावण उठा ले गया है। आखिर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव ने रावण पर चढाई कर दी। भयानक युद्ध हुआ। युद्ध में लक्ष्मण के द्वारा रावण मारा गया। राम की विजय हुई। अब राम और लक्ष्मण सीताके साथ अयोध्या आ गये। इनके आनेसे अयोध्या के लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। भरत ने राम को राज्य सौंप दिया। रामचन्द्र न्याय-नीति के साथ प्रजा का पालन करने लगा।

एक दिन राजा रामचन्द्र रात में वेष बदलकर प्रजा का सुख-दुख जानने के लिए नगर में निकले। घूमते-घूमते वे एक धोबी के घर पहुँचे। धोबी और धोबिन आपस में झगड़ रहे थे। धोबिन देर से घर में आई थी। धोबी उसे डाट रहा था। उसने कहा—'जा, मैं तुझे अपने घर नहीं रक्खूँगा। मैं राम नहीं हूँ; जिन्होंने रावण के घर रही हुई सीता को रख लिया।' धोबी की यह बात सुन कर राम के हृदय को गहरी चोट पहुंची। उन्होंने सीता को त्याग देने का निश्चय कर लिया।

प्रातः काल राम ने लक्ष्मण से रात का सब हाल कहा। लक्ष्मण ने कहा—'सीताजी बिल्कुल शुद्ध हैं। वह परम सती हैं। उनके विषय में रंच मात्र भी सन्देह करना उचित नहीं है। वह गर्भवती हैं। ऐसी हालत में उन्हें त्यागना ठीक नहीं।

राम बोले—तुम ठीक कहते हो, मगर लोक-निन्दा से कुल को कलंक लगेगा। सीता पवित्र भले हो, फिर भी लोक-निन्दा से बचने के लिये उसे त्यागना ही उचित है।

वन के दृश्य देखने के बहाने राम ने सीता को वन में भेज दिया। सारथी को समझा दिया कि सीता को वन में छोड़कर

वाली रथ लौटा लाना। भयानक वन में पहुँच कर सारथी ने सीता को असली बात बतला दी। जब सीता को पता चला कि राम ने उसका परित्याग कर दिया है तो मानसिक दुःख के कारण वह बेहोश हो गई। सीता की हालत देखकर सारथी बहुत दुःखी हुआ। आखिर सीता को छोड़कर वह अयोध्या लौट गया।

भयावने वन में अकेली सीता रह गई। कहने को वह अकेली थी, मगर बिल्कुल अकेली नहीं थी। सीता का पुण्य और धर्म तो उसके साथ ही था। पुण्य और धर्म जिसका साथी होता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसे दूसरे सहायक भी मिल ही जाते हैं। सीता को भी सहायक मिल गया। पुण्डरीक-पुर का राजा वज्रजंघ हाथियों को पकड़ने के लिये उसी जंगल में आया था। उसने सीता को देखा और उसकी इस हालत का कारण पूछा—सीता भय के कारण सकपका गई। तब राजा के मन्त्री ने कहा—देवी! यह राजा वज्रजंघ हैं, शीलवान हैं, परस्त्री को बहिन समझने वाले श्रावक हैं। इनसे भय मत खाओ। यह तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।

सीता को तसल्ली हुई। उसने अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा ने कहा—एक धर्म वाले परस्पर भाई होते हैं। तुम मेरी बहन हो। मेरे साथ चलो और वहाँ रह कर अपने धर्म का पालन करो। सीता वज्रजंघ के साथ चली गई और धर्म-ध्यान में अपना समय विताने लगी।

यथा समय सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रक्खा गया। वज्रजंघ ने उन्हें शास्त्रविद्या और शस्त्रविद्या में निपुण बना दिया। लव के साथ अपनी कन्या का विवाह भी कर दिया। कुश के लिए राजा

कज्रजंघ ने पृथ्वीपुर के राजा पृथुराज की कन्या की माँगनी की। पृथुराज ने कहा—लव और कुश की जाति और कुल का पता नहीं है। मैं अपनी कन्या कुश को नहीं दे सकता।

वज्रजंघ ने इसे अपना अपमान समझा। लव और कुश को साथ लेकर उसने पृथुराज पर चढ़ाई कर दी। पृथराज युद्ध में हार गया और उसने अपनी कन्या का विवाह कुश के साथ कर दिया। इसी समय नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने लव-कुश के वंश का परिचय दिया। पृथुराज को बहुत प्रसन्नता हुई। वज्रजंघ सबको साथ लेकर पुण्डरीकपुर लौट आया।

लव-कुश को जब मालूम हुआ कि मेरी माता पर झूठा कलंक लगाया गया और गर्भवती अवस्था में वन में छोड़ दिया गया तभी से रामचन्द्र पर उन्हें क्रोध आ रहा था। वे अपनी माता का बदला लिए बिना नहीं रह सकते थे। आखिर वज्रजंघ की सेना लेकर उन्होंने अयोध्या पर हमला बोल दिया। अचानक हमला होते देख राम और लक्ष्मण सोच-विचार में पड़ गए। वे समझ ही न सके कि अयोध्या पर आक्रमण करने का साहस कौन कर सकता है? अपनी सेना लेकर वे सामना करने गए। लेकिन लव-कुश ने ऐसी मार मारी कि राम की सेना प्राण लेकर भागी। लक्ष्मण ने शत्रु को रोकने की खूब कोशिश की, मगर उनका भी वश नहीं चला। तब अत्यन्त कुपित होकर लक्ष्मण ने शत्रु का सिर काट लाने के लिए चक्र चलाया। चक्र लव-के पास आकर दोनों की प्रदक्षिणा करके वापिस लौट गया। अब राम और लक्ष्मण की निराशा का पार न रहा, दोनों उदास होकर बैठ गए।

उसी समय नारदजी वहां आ पहुंचे। राम और लक्ष्मण को उदास बैठे देखकर, हंसते हुए कहने लगे-प्रसन्न होने के बदले उदास क्यों हो रहे हो! अपने शिष्य और पुत्र से हार जाना तो हर्ष की बात है, तुम शोक मना रहे हो!

राम ने कहा-हम आपकी बात समझ नहीं सके कृपा करके स्पष्ट रूप से समझाइए।

नारदजी बोले-ये लड़ने वाले वीर-माता सीता के पुत्र हैं। इसी कारण तो चक्र इन पर नहीं चल सका!

नारदजी की बात सुनकर राम और लक्ष्मण के हर्ष का पार न रहा, वे लव और कुश से मिलने चले। लव और कुश ने भी हथियार डाल दिए। दोनों ने आगे बढ़कर राम-लक्ष्मण को प्रणाम किया। राम-लक्ष्मण को इतना आनंद हुआ जितना स्वर्ग की संपदा मिलने पर भी न होता! राम ने सीता को लाने की आज्ञा दी। लक्ष्मण ने सीता के पास पहुंचकर उन्हें प्रणाम किया और अयोध्या चलने के लिए प्रार्थना की। सीता ने कहा-वत्स! मैं अयोध्या चलने को तैयार हूं, मगर जिस लोकनिन्दा के कारण तुम्हारे भाई ने मेरा त्याग किया है, वह अब भी मौजूद है। मैं जब तक अपने सतीत्व की परीक्षा नहीं दूंगी तब तक अयोध्यामें पैर नहीं रक्खूंगी।

आखिर सीता की अग्नि-परीक्षा हुई एक कुण्ड में धधकती हुई अग्नि थी। अग्नि की प्रचंड ज्वालाएं आसमान से बात करती थीं। सीता ने वहां आकर कहा-'अगर मैंने रामचन्द्रजी के सिवाय किसी दूसरे को पति माना हो तो हे अग्नि! मेरे इस पापी शरीर को जला डालना। मेरे धर्म और अधर्म की साक्षी तू है।'

दूर-दूर के नर और नारी वह दृश्य देखने के लिये उपस्थित थे। लोग सोच रहे थे-कहां सीता का सुकोमल शरीर

और कहाँ यह प्रचण्ड आग ! हाय ! सीता का शरीर इस आग को कैसे सहन करेगा ! कई लोग चकित थे। कइयों की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसी समय सीता नमस्कार-मन्त्र का स्मरण करके आग में कूद पडी। शील धर्म के प्रभाव से आग तत्काल बुझ गई और आग का कुण्ड पानी से भर गया। कमल का सिंहासन बन गया। सती सीता सिंहासन पर विराजमान दिखाई देने लगी।

जय-जयकार से सारा आकाश गूँज उठा। देवों ने सती पर फूलों की वर्षा की। हर्ष से वातावरण भर गया, सर्वत्र आनंद ही आनंद छा गया।

सीता के हृदय में न हर्ष था, न विषाद था उनकी आत्मा में पूरा समभाव था।

इस घटना से रामचन्द्र को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा–'लोकनिन्दा से डर कर मैंने बड़ा अनर्थ किया। सती सीता को विना अपराध ही वन में छुड़वा दिया। मैं इस पाप से कैसे छूटूंगा।' सीता ने उनसे कहा–'नाथ ! आप वृथा पछता रहे हैं। सोने की कीमत आग में तपाने से ही होती है इस परीक्षा से मेरी और आपकी प्रतिष्ठा बढी है, घटी नहीं है।'

सीता ने इस प्रकार समझा कर राम को शान्त किया। पर सीता के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। अतः राम से आज्ञा लेकर सीता ने दीक्षा धारण कर ली। कई वर्षों तक संयम का पालन करके अन्त में सीता ने समाधिपूर्वक शरीर-त्याग किया। बारहवें स्वर्ग में इन्द्र की पदवी प्राप्त की।

धन्य है, धन्य है सती सीता, जिसने अपने जीवन में शील-धर्म का अद्भुत प्रभाव संसार के सामने उपस्थित किया।

०००

१६

द्रौपदी

सती द्रौपदी के जीवन-चरित को समझने के लिये उसके पूर्व भवों को जान लेना आवश्यक है। पूर्व भव के संस्कार अगले भव के जीवन पर कितना असर डालते हैं, यह बात द्रौपदी की कथा से भलीभांति समझ में आ जायगी।

द्रौपदी एक भव में नागश्रीनामक ब्राह्मणी थी। एक बार उसके घर भोज होने वाला था। उसने तूंबे का शाक बनाया, शाक बन जाने के बाद उसने चखा तो मालूम हुआ कि तूंबा कडुआ जहर है। बदनामी से बचने के लिये उसनें शाक एक किनारे रख दिया। उसी समय धर्मरुचि नामक अनगार उसके घर भिक्षा के लिये पहुंचे। नागश्री ने वह जहरीला शाक मुनि-राज को बहरा दिया। मुनिराज शाक लेकर उपाश्रय में पहुंचें। आहार करते समय पता चला कि शाक जहरीला है। गुरुजी ने शाक की मनाई कर दी और एकान्त में जाकर निर्जीव भूमि में

परठा देने की आज्ञा दी। धर्मरुचि परठाने गए। जाँच के लिए उन्होंने शाक के एक-दो बूंद जमीन पर डाले। चीटियाँ आईं और शाक खाकर मर गईं। यह दृश्य देखकर मुनिराज के हृदय में दया उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—यदि यह शाक जमीन पर परठा दिया जायगा तो न जाने कितने अज्ञान प्राणी मृत्यु के शिकार होंगे। अतएव जीवों की रक्षा के लिए इस शाक को स्वयं ही खा लेना उचित है। यह सोचकर दया के सागर मुनिराज ने वह शाक खा लिया। जहर के प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गई।

बुरा काम कितना ही छिपाकर किया जाय, अन्त में वह प्रकट हो ही जाता है। नागश्री की दुष्टता भी सब पर प्रकट हो गई सबने उसे धिक्कार दिया। घरवालों ने उसे घर से निकाल दिया। वह भीख मांगकर अपना पेट पालने लगी। अन्त में अनेक रोगों का शिकार होकर वह मरी। नरक आदि अनेक योनियों में घूमते-घूमते वह चंपानगरी में उत्पन्न हुई। उसका नाम सुकुमालिका रक्खा था।

सुकुमालिका बडी हुई तो जिनदत्त के साथ उसका विवाह हुआ। मगर पूर्वजन्म के पाप के कारण सुकुमालिका के शरीर का स्पर्श तलवार की धार के समान तीखा और कष्ट देनेवाला था। इस कारण जिनदत्त ने उसका परित्याग कर दिया। सुकुमालिका दीक्षा धारण करके साध्वी बन गई। कुछ दिनों के बाद सुकुमालिका साध्वी अपनी गुरुआनी के मना करने पर भी नगर के बाहर बगीचे में जाकर आतापना लेने लगी।

एक दिन की बात है। देवदत्ता नाम की एक वेश्या पाँच पुरुषों के साथ बगीचे में आई। उस वेश्या को देखकर सुकुमालिका सोचने लगी—यह स्त्री भाग्यशालिनी है। इसे पाँच पुरुष चाहते हैं! अगर मेरे तप, त्याग और संयम का कुछ फल हो तो

मैं भी इसी प्रकार पांच पुरुषों की प्यारी बनूं !

इस प्रकार निदान (नियाणा) करके वह अपनी गुरुआनी के पास लौटी। मगर उनके दिल में भोग भोगने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी। इस कारण वह संयम पालने में ढीली हो गई। गुरुआनी ने उसे अलग कर दिया। अन्त में प्राण त्याग कर वह स्वर्ग में देवगणिका हुई।

स्वर्ग की आयु पूरी हो जाने के बाद राजा द्रुपद की लड़की के रूप में उत्पन्न हुई। द्रुपद कम्पिलपुर के राजा थे। उनकी पटरानी का नाम चुलनी था। द्रुपद की लड़की का नाम द्रौपदी रक्खा गया।

विवाह के योग्य हो जाने पर उसका स्वयंवर हुआ। स्वयंवर में पांचों पाण्डव भी मौजूद थे। पूर्वजन्म में किए हुए नियाणे के प्रभाव से द्रौपदी ने पांचों पाण्डवों के गले में वरमाला डाल दी। सभी राजाओं ने द्रौपदी के इस काम की प्रशंसा की। इस प्रकार द्रौपदी का नियाणा पूरा हो गया। उसे पांच पति मिल गए।

किसी भी जीव की हालत हमेशा एक सरीखी नहीं रहती। बड़े-बड़े पापी भी धर्मात्मा बन जाते हैं और कभी-कभी बड़े-बड़े धर्मात्मा भी पाप के उदय से पापी बन जाते हैं। द्रौपदीने जीवन के पिछले कई भवों में पाप का सेवन किया था, मगर अब उसकी हालत बदल गई थी। उसने धर्म का स्वरूप समझ लिया था। इसी कारण पांच पतियों के होते हुए भी वह सती गिनी गई। पांच पतियों के सिवाय संसार के दूसरे सब पुरुषों को वह भाई के समान समझती थी। इसीलिए वह शीलवती थी।

एक बार द्रौपदी बड़े दर्पण में अपना शरीर देख रही थी। इतने में वहाँ नारदजी आ पहुँचे। द्रौपदी को नारदजी का आना मालूम नहीं हुआ। इससे नारदजी कुपित होकर चले गए। घूमते-घूमते वह धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी में पहुँचे। नारदजी वहाँ के राजा पद्मोत्तर के पास पहुँचे।

राजा ने नारदजी का स्वागत करके कहा—'आप जगह-जगह घूमते रहते हैं। कहीं कोई अचरज की बात देखी हो तो बतलाइए।'

नारदजी बोले—मैं हस्तिनापुर गया था। वहाँ पाण्डवों के रनवास में द्रौपदी को देखा है। उसकी सुन्दरता अलौकिक है। आपके यहाँ ऐसी सुन्दरी एक भी नहीं है।

नारदजी की बात सुनकर पद्मोत्तर ने द्रौपदी को पाने की इच्छा की। राजा ने एक देव की आराधना की। देव आकर द्रौपदी को उठा ले गया। राजा पद्मोत्तर द्रौपदी को देखकर बहुत खुश हुआ। उसने द्रौपदी से कहा—'देवी! यह राज्य अब तुम्हारा है। मैं खुद तुम्हारा दास हूँ। मेरे साथ आनन्द से रहो और भोग भोगो।

राजा की बात सुनकर द्रौपदी का मन बिलकुल विचलित नहीं हुआ। वह पक्की शीलवती थी। उसने कहा—राजन्! तुम भूल रहे हो। मैं संसार के किसी भी लोभ में पड़कर अपना शील त्याग नहीं सकती। धर्म ही मनुष्य-जीवन का सार है। शील स्त्री का सबसे बड़ा सिंगार है। जो स्त्री शील का पालन करती है, वह इस लोक में भी सुखी होती है और परलोक में भी सुखी होती है। तुम चाहो तो मेरे प्राण ले सकते हो, पर मेरा धर्म नहीं ले सकते।'

द्रौपदी का यह उत्तर सुनकर राजा पद्मोत्तर निराश हो गया। द्रौपदी पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई तपस्या में लीन रहने लगी। थोड़े दिनों के बाद श्रीकृष्णजी के साथ पाण्डव वहाँ पहुँच गए। राजा पद्मोत्तर को युद्ध में हरा कर द्रौपदी को वापिस ले आये। द्रौपदी आनन्द के साथ रहने लगीं।

पाण्डवों के चचेरे भाई कौरव थे। कौरव सौ थे और दुर्योधन उन सब में बड़ा था। वह बड़ा चालबाज और धूर्त था। वह पाण्डवों का राज्य हड़पना चाहता था। एक दिन भोले-भाले युधिष्ठिर को उसने जुआ खेलने के लिये तैयार कर लिया। युधिष्ठिर जुआ खेलनें बैठे तो सारा राज्य हार गये। चारों भाइयों सहित अपने आपको हार गये और अन्त में द्रौपदी को भी हार गये। इस प्रकार पाँचों पाण्डव अब कौरवों के दास बन गये। दुर्योधन राज्य का मालिक बन गया।

दरवार लगा था। दुर्योधन सिंहासन पर बैठा था। पाण्डव अपना सिर नीचा किये खडे थे। उसी समय दुःशासन द्रौपदी को चोटी पकड़ कर उसे दरवार में घसीट लाया।

द्रौपदी यह अत्याचार सहन नहीं कर सकी। उसने दरबार में बैठे हुए भीष्म, द्रोण, विदुर आदि वुजुर्गों से गरज कर कहा- आप लोग चुपचाप, पत्थर की मूर्ति-सी बने बैठे हैं। मेरे साथ घोर अन्याय हो रहा है। फिर भी आपकी जीभ नहीं खुलती!

दुःशासन बीच में ही बोल उठा—हल्ला मत मचाओ। अब तुम रानी नहीं रही! तुम्हें जुए में युधिष्ठिर हार गए हैं! तुम हमारी दासी हो।

द्रौपदी ने तड़ाक से उत्तर दिया—नहीं, मैं हर्गिज दासी नहीं बन सकती। धर्मराज (युधिष्ठिर) ने मुझे पहले दाव पर

रक्खा था या बाद में ? अगर अपने आपको हार जाने के बाद मुझे दाव पर रक्खा है तो मैं दासी नहीं बन सकती।

भीष्म आदि बुजुर्ग द्रौपदी की दलील के कायल थे, मगर दुर्योधन के डर से कुछ भी न बोल सके ।

पाण्डवों ने अपनी राजसी पोशाक उतार दी। मगर द्रौपदी जैसी की तैसी खडी रही । उसके चेहरे पर इस समय अलौकिक तेज चमक रहा था । द्रौपदी ने जब कपड़ा नहीं उतारा तो दुर्योधन ने दुःशासन से कहा–देखते क्या हो ? इसका कपड़ा खींच कर हटा दो। इसे नंगी कर दो !

द्रौपदी भगवान के ध्यान में तन्मय हो गई। पाण्डव बडे बलवान् थे, मगर वे दास बन चुके थे। द्रौपदी की रक्षा करने वाला अब कोई दिखाई नहीं देता था। इसलिये द्रौपदी ने धर्म की असीम शक्ति का सहारा लिया। वह प्रभु के ध्यान में डूब गई और नमस्कार मन्त्र का जाप करने लगी।

दुःशासन ने पूरी ताकद लगा दी, मगर द्रौपदी का चीर वह नहीं खींच सका। वह भयभीत-सा होकर खड़ा रह गया। दुर्योधन ने कहा–' खींच, खींच जरा जोर लगा। तब दुःशासन बोला–मैंने अपनी पूरी ताकद लगा दी है, मगर चीर नहीं खिचता। मालूम होता है, कोई मेरा हाथ पकड़ रहा है। मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा रहा है । भाई साहब, अब आप खुद आइए। मुझ से यह चीर नहीं खिचता ।'

इसी समय दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र दरबार में जा पहुँचे। उन्होंने द्रौपदी को तसल्ली देकर पूछा–द्रौपदी ! तुम क्या चाहती हो ? द्रौपदी ने कहा–मैं पांचों पाण्डवों का छुटकारा चाहती हूँ।

धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को दासपन से छुटकारा दिला दिया।

दुर्योधन को यह बात पसंद न आई। उसने फिर युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए न्योता दिया। युधिष्ठिर फिर तैयार हो गया। अब की बार यह शर्त लगाई गई कि हारने वाला बारह वर्ष तक वनवास करे और फिर एक वर्ष तक अज्ञातवास करे। अगर अज्ञातवास में पता चल जाय तो फिर बारह वर्ष तक वनवास करे।

इस बार युधिष्ठिर फिर हार गए। शर्त के अनुसार पाण्डव द्रौपदी के साथ वनवास करने लगे। जंगल में झोंपडी बना कर रहते और समय पूरा करते थे। इस तरह बारह वर्ष पूर्ण होने के बाद एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिए वे सब विराट-नगर में पहुंचे। युधिष्ठिर ने अपना नाम कंक रक्खा। वे राजा के पुरोहित बन गए। भीम रसोइया बने। अर्जुन अपना नाम बृहन्नला रखकर रनवास में नृत्य दिखाने लगे। नकुल और सहदेव क्रम से घोडों की तथा गाय-भैंसों की सार-संभाल करने की नौकरी करने लगे। द्रौपदी अपना नाम सैरन्ध्री रखकर रानी की दासी का काम करने लगी। किसी को पता नहीं चला कि यह कौन है? इस प्रकार गुप्त रूप से एक वर्ष बिताने का उपाय खोज लिया गया।

रानी का भाई कीचक दुराचारी था। वह द्रौपदी को बहुत तंग किया करता था। द्रौपदी ने भीम से उसकी शिकायत की। भीम बडे बलवान् तो थे ही। एक रात में उन्होंने कीचक को मार डाला और द्रौपदी के शील की रक्षा की।

इस प्रकार एक वर्ष अज्ञातवास भी समाप्त हो गया पाण्डव प्रकट हो गए। न्याय के अनुसार पाण्डव को राज्य मिल

जाना चाहिए था। मगर दुर्योधन की नियत खराब थी। उसने राज्य देने से इन्कार कर दिया। युद्ध हुआ। पाण्डवों की विजय हुई। मगर इस युद्ध में लाखों-करोडों आदमी मारे गये। यह हत्याकाण्ड देखकर द्रौपदी के चित्त में बहुत क्षोभ हुआ। अनेक कष्ट सहन करने के बाद जब उसके रानी बनने का अवसर आया तब उसे संसार से वैराग्य हो गया। उसने समझ लिया—संसार में कहीं भी और किसी को भी शान्ति नहीं है। आखिर द्रौपदी ने दीक्षा धारण कर ली। संयम का पालन करके आयु के अन्त में सती द्रौपदी ने पांचवां स्वर्ग प्राप्त किया। स्वर्ग से चवकर द्रौपदी का जीव मोक्ष प्राप्त करेगा।

सती द्रौपदी का लगभग सारा जीवन कष्ट में बीता। बडे-बडे कष्ट आने पर भी वह धर्म से नहीं डिगी। उसने सदैव अपने शील-धर्म की रक्षा की। शील के प्रताप से अन्त में उसके सभी कष्टों का अन्त आ गया। उसने अपने जीवन को धर्म-साधना में लगाकर यह दिखा दिया कि सच्चा सुख त्याग में है, भोग में नहीं है। जो स्त्री द्रौपदी की भांति धर्म पर दृढ़ रहेगी, उसका अवश्य कल्याण होगा।